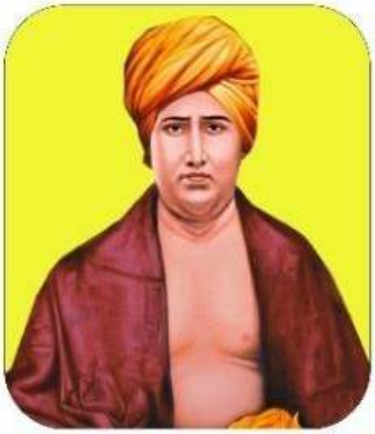

वर्ष २ अंक २३
संवत् २०७७ श्रावण- भादो मास
अगस्त २०२०

आर्ष क्रान्ति

वैदिक समाज व्यवस्था के लिए समर्पित

श्रावणी उपाकर्म वैदिक परंपरा का अद्भुत उत्सव। ज्ञान की धारा, स्वाध्याय की धारा और शिक्षा की धारा निरंतर बढ़ती रहे ,ऐसी शुभकामना है श्रावणी उपा कर्म के लिए......

अगस्त मास में पढ़ने वालीं विशेष तिथियों जिनका मानव समाज, संस्कृति, धर्म , शिक्षा और साहित्य से विशेष संबंध है , उन्हें हम स्मरण कर जीवन और समाज को उत्तम बनाएं। ये तिथियां हमें उनके सम्बंध को बतातीं हैं और प्रेरणा भी देती हैं । ये हैं— 1 अगस्त स्वाधीनता संग्राम सेनानी पुरुषोत्तम दास टंडन जयंती , 2 अगस्त अंतर्राष्ट्रीय मित्रता दिवस , 3 अगस्त रक्षाबंधन दिवस, 3 अगस्त राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त जयंती, 6 अगस्त हिरोशिमा दिवस, 9 अगस्त भारत छोड़ो आंदोलन दिवस, 10 अगस्त झंडा गीत के रचयिता पद्मश्री श्यामलाल गुप्त पार्षद पुण्यतिथि ,11 अगस्त श्री कृष्ण जन्माष्टमी, 11 अगस्त खुदीराम बोस बलिदान दिवस, 12 अगस्त अंतर्राष्ट्रीय युवा दिवस, 13 अगस्त वीर दुर्गादास राठौर जयंती, 14 अगस्त रेडियो वूमेन उषा मेहता जयंती, 15 अगस्त भारत का स्वाधीनता दिवस, 15 अगस्त श्री अरविंद का जन्म दिवस, 16 अगस्त हिंदी की महान कवयित्री सुभद्रा कुमारी चौहान जयंती , 17 अगस्त अमर शहीद मदन लाल धींगरा पुण्यतिथि , 12 अगस्त नेताजी सुभाष चंद्र बोस पुण्यतिथि ,19 अगस्त विश्व मानवतावादी दिवस, 20 अगस्त सद्भावना दिवस, 20 अगस्त भारतीय अक्षय ऊर्जा दिवस, 26 अगस्त महिला समानता दिवस, 30 अगस्त लघु उद्योग दिवस।

श्रावणी उपाकर्म व
जन्माष्टमी
की विशेष शुभकामनाएं

स्वतंत्रता दिवस व
श्री अरविंद जन्मदिवस
की विशेष शुभकामनाएं

आर्य लेखक परिषद्

ओ३म्

आर्य लेखक परिषद् का मुख पत्र

आर्ष क्रान्ति

अगस्त 2020

वर्ष–२ अंक–२३,
विक्रम संवत् २०७७
दयानन्दाब्द– १९६
कलि संवत् – ५१२१
सृष्टि संवत् –१,९६,०८,५३,१२१

प्रधान सम्पादक
वेदप्रिय शास्त्री
(७६६५७६५११३)

❖

सम्पादक
अखिलेश आर्येन्दु
(८१७८७१०३३४)

❖

सह सम्पादक
प्रांशु आर्य (कोटा)
(८७३९९७९९३०,
९९९३९७०९४०)

❖

आकल्पन
प्रवीण कुमार (महाराष्ट्र)

❖

सम्पादकीय कार्यालय
महर्षि दयानन्द आश्रम
ग्राम सिताबाडी, केलवाड़ा
जिला–बारां (राजस्थान)–३२५२१६

अनुक्रम

विषय

१. वाग्देवी (सम्पादकीय)
२. बदलाव (कविता)
३. आस्था अनास्था के बीच भंवर में फंसे हैं जब तक
४. कभी न हारे हैं जीवन में (कविता)
५. Second Ashrama : Grihastha Ashrama
६. आओ, वेदाध्ययन और वेदप्रचार करें
७. श्रावणी गीत (कविता)
८. रक्षाबंधन : संस्कृति, शिक्षा और स्वाध्याय का पावन पर्व
९. छः दर्शनों में परस्पर विरोध व अविरोध पर विचार
१०. धर्म और नीति के युगांतरकारी महामानव...
११. मानव सभ्यता के महान् मार्गदर्शक श्री अरविन्द
१२. दुनियादारी का रंग जिसके ऊपर न चढ़े वही महात्मा
१३. क्या लिखूं, मैं क्या बोलूं ? (कविता)
१४. कभी न हारे हैं जीवन में (कविता)
१५. प्यार होना चाहिए (कविता)

ईमेल – aryalekhakparishad@gmail.com
वेबसाइट – https://aryalekhakparishad.com/
फेसबुक – आर्य लेखक परिषद्

Digital

सम्पादकीय

वाग्देवी

वैदिकों में वेद वर्णित वाग्लोक में प्रतिष्ठित वाग्विज्ञान का बड़ा महत्व है। वाग्देवी प्राणी मात्र में समाहित है। सृष्टि का प्रत्येक प्राणी बोलता है। चेतन जगत् अपने आंतरिक भावों की अभिव्यक्ति वाणी के द्वारा ही करता है। हर्ष, शोक, प्रेम, क्रोध, पीड़ा, सांत्वना, संवेदना, शूरता, वीरता और अभिमान आदि भावों के व्यक्तीकरण में वाक् प्रमुख माध्यम है। वाक् में अर्थ निहित होता है, सभी प्राणी उस अर्थ को ही प्रकट करने के लिए वाणी का प्रयोग करते हैं। वाणी शब्दों के द्वारा प्रकट होती है, अतः शब्द और अर्थ का नित्य सम्बन्ध होता है। यह वाक् अमृता, नित्या, दिव्या है और ब्रह्म में विद्यमान रहती है और वहीं से देवों के माध्यम से उत्सृष्ट होकर प्राणियों तक पहुंचती है और उनके मुख से निकलकर लोक व्यवहार में प्रयुक्त होती है। वैदिक शास्त्रों में ***"नित्यः शब्दार्थ सम्बन्धः "*** और ***"ब्रह्मायं वाचः परमं व्योम"*** का यही तात्पर्य है।

वाणी का विकसित स्वरूप मनुष्यों में ही प्रकट होता है। मनुष्य जो कुछ बोलता है वह स्पष्ट, व्यक्त, साफ सुनाई देता है और उसे सुनकर अन्य मनुष्य उसे ज्यों का त्यों दोहरा सकता है। मनुष्य जो बोलता है उसे स्वयं भी सुनता है और अन्य को भी सुनाता है। जो सुन नहीं सकता वह बोल भी नहीं सकता। बोलने और सुनने का यंत्र मस्तिष्क में निहित होता है। मुख और कानों के रूप में बाहर दिखाई पड़ता है।

सार्थक, व्यक्त स्पष्ट शब्द को वर्ण कहते हैं, वर्णों से मिलकर ही वाक् भाषा कहलाती है। वर्णों से पद और पदों से वाक्य और वाक्यों का सुसम्बद्ध समुच्चय ही भाषा बन जाता है। कहना, सुनना और समझना फिर उसे धारण करना यह एक क्रम है जो मन और बुद्धि के द्वारा सम्पादित होता है। बुद्धि में स्मृति और अनुभव के रूप में जो कुछ संग्रह होता है उसे ज्ञान कहते हैं। ज्ञान सुख का मूल है यह मनुष्य को दुखों से छुडाता है और मुक्ति प्रदान करता है। इसलिए वैदिक महापुरुष लोग वाणी का अत्यंत आदर करते थे और उसका सदुपयोग करके उसमें निहित सामर्थ्य का लाभ लेते थे। वेद में वाणी के सामर्थ्य का वर्णन इस प्रकार किया गया है ***–"सा विश्वायुः सा विश्वकर्मा सा विश्व धाया"।***

अर्थात् वाणी सम्पूर्ण आयु है, सम्पूर्ण शिल्पादि कला कौशल है, सबका धारण पोषण करने वाली कामधेनु है मनवांछित फल देने वाली है, अपि च –

"सा प्रथमा संस्कृतिर्विश्ववारा"

वाणी ही सर्व रक्षिका पहली संस्कृति है। संसार में विद्यमान संस्कृतियों का उद्गम स्थान वाक् सागर ही है। इस वाक् के सदुपयोग और दुरुपयोग से ही मनुष्य देव या असुर बनता है।

वेदवाक् ही विश्व में प्रचलित सम्पूर्ण भाषाओं का मूल स्रोत है।

वेद में वाक् का एक व्रत कहा गया है जिसे करने से मनुष्य देव बन जाता है। वेद मनुष्य जीवन का उद्देश्य देव बन जाना ही बताते हैं। देवों का ही अनुकरण करने का उपदेश करते हैं। यथा –

"देवा इव अमृतम् रक्षमाणा......."

"देवा भागम् यथा पूर्वे संजानाना उपासते"

"यथा वै देवानां चरणं तदनु मनुष्याणाम्" इत्यादि।

ईश्वर की ओर से मनुष्यों के लिए आवश्यक सभी पदार्थों को देने के लिए जिन चेतन वा जड़ साधनों को माध्यम बनाया जाता है वे सब देव कहलाते हैं। अर्थात् ईश्वरीय देन देवों के माध्यम से ही मनुष्यों को प्राप्त होती है। यह देव सत्यव्रती होते हैं।

"सत्यम् वै देवा"

"इदम् हि व्रतम् यत् सत्यम्"

इसीलिए वैदिक कर्मकाण्ड में यजमान व्रत ग्रहण के समय कहता है कि –

"इदमहमनृतात् सत्यमुपैमि"

अर्थात् यह मैं झूठ से अलग होकर सत्य के समीप जाता हूँ।

सत्य के समीप जाने का कारण क्या है? इसका उत्तर शतपथकार ने दिया है, वह कहता है कि –

"अमेध्यो वै पुरुषःयदनृतम् वदति"

अर्थात् झूठ बोलने वाला अमेध्य, असंस्कृत, अग्राह्य, अनुपयोगी व्यर्थ है।

वैदिक कर्मकाण्ड यहीं से प्रारम्भ होता है। मनुष्य को परिवार, समाज और राष्ट्र के लिए उपयोगी बनाने के लिए उसे संस्कृत करना होता है। इसका प्रारम्भ उसे सत्यवादी बनाने से ही होता है, झूठा मनुष्य उक्त तीनों में से किसी के भी योग्य नहीं होता। सत्य सामाजिकता की, मनुष्यता की जान है। इसलिए वैदिक समाज में सबको व्रती होने की बात कही गई है और प्रत्येक पद पर प्रतिष्ठित होने से पहले व्रत लेने, प्रतिज्ञा करने, शपथ ग्रहण करने का विधान किया गया था और प्राण देकर भी उस वचन को निभाने पर जोर दिया गया था। आज परिवार, समाज, राष्ट्र, शासन, प्रशासन और न्याय क्षेत्र में सर्वत्र झूठ का बोलबाला है, सत्य को अनादृत किया जा रहा है। परिणाम स्वरूप प्रजा सुख शांति से दूर दुख सागर में डूब मरने को विवश हो चुकी है।

वेद वाणी निर्दोष और श्रेष्ठ वाणी है। ईश्वर की ओर से कहा गया है कि मैं चाहता हूं कि जैसे मैंने यह कल्याणी वाणी तुम्हें कही है उसी प्रकार उसी भाव से तुम सब मनुष्य लोग मनुष्य मात्र के लिए इसका प्रवचन उपदेश करते रहना। देखिए वेद मंत्र—

यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः।
ब्रह्मराजन्याभ्याम् शूद्राय चार्याय च स्वाय चारणाय च.....
..।। यजुर्वेद २६—२

वेदवाक् मनुष्यों के व्यवहार में आकर शुद्ध से अशुद्ध हो जाती है और परिमार्जन न करने पर समाज को भ्रष्ट और पतित कर देती है। अतः वेद ने उसके परिमार्जन का भी उपदेश किया है। यथा —

सक्तुमिव तितउना पुनन्तो यत्र धीरा मनसा वाचमक्रत।
अत्रा सखायः सख्यानि जानते भद्रैषां
लक्ष्मीर्निहिताधिवाचि।।
—ऋग्वेद 10—71—२

इसका अर्थ है कि जहां बुद्धिमान् लोग छलनी से सत्तू की तरह मन की छलनी से वाणी को छानकर प्रयोग करते हैं वहीं मित्र लोग मित्रता के महत्व को समझते हैं।

इनकी वाणी में कल्याणकारिणी सुखदायिनी लक्ष्मी निवास करती है।

अब वाणी में कौन सा कचरा मिला होता है जिसे मन की छलनी से छानना होता है, यह बात मनु ने बताई है —

पारुष्यंअनृतं चैव पैशून्यं चापि सर्वशः।
असम्बद्ध प्रलापश्च वांग्मयं स्याच्चतुर्विधम्।।

अर्थात् कठोरता, झूठ, और सब प्रकार की चुगली और असम्बद्ध प्रलाप ये चार प्रकार के अपद्रव्य वाणी में मिले होते हैं। इसलिए नीतिकार ने कहा है —

सत्यम् ब्रूयात् प्रियम् ब्रूयात् न ब्रूयात् सत्यमप्रियम्।
प्रियं च नानृतम् ब्रूयात् एष धर्मः सनातनः।।

सत्य बोलें, प्रिय बोलें, अप्रिय सत्य न बोलें, प्रिय और झूठ न बोलें यही सनातन आचार है।

उर्दू का शायर इसका फल कहता है —

बनोगे खुशरुए अक्लीमेदां शीरींज़ुबां बन कर।
जहांगीरी करेगी यह अदां नूरे जहां बनकर।।

हिन्दी का कवि कहता है —

"वशीकरण एक मंत्र है तज दे वचन कठोर।।"

परन्तु हितकारी कठोर वचन को उत्तम माना गया है। सत्य के प्रति मनु बहुत बड़ी बात कहते हैं—मनु कहते हैं कि जब वाक् सत्य होती है तो वह मन को निर्मल कर देती है। ***"मनःसत्येन शुद्धयति"*** और जिसके वाणी और मन दोनों शुद्ध हो जाते हैं उसे यह फल मिलता है —

यस्य वांग्मनसी शुद्धे सम्यग्गुप्ते च सर्वदा।
स वै सर्वमवाप्नोति वेदान्तोपगतम् फलम् ।।

अर्थात् वह वेदांत के सम्पूर्ण फल को प्राप्त करता है। सत्य वाणी के लिए मनु कहते हैं कि —

वाच्यार्था नियताःसर्वे वांग्मूला विनिश्रिता।
तांस्तु य स्तेयेद् वाचं सर्वस्तेयकृन्नरः।।

अर्थात् सभी ज्ञान और व्यवहार का मूल वाणी ही है अतः जो वाणी की चोरी करता है अर्थात् झूठ कहता है वह सब प्रकार की चोरी करने वाला चोर होता है।

इसलिए वैदिक समाज में प्रतिज्ञा हानि या वचन भंग करने वाले को अत्यंत निकृष्ट और पतित माना गया है और उसे किसी भी पद के योग्य नहीं स्वीकारा गया।

वाणी के शेष दो दोष चुगली और असम्बद्ध प्रलाप हैं। किसी को हानि पहुंचाने, कलह करवाने या मजा लेने के लिए पीठ पीछे सच्ची झूठी बातें कहना चुगली है। गप्पें गाली गलौज, कल्पित किस्से ,कथावाचकों की झूठी कथाएं यह सब असम्बद्ध प्रलाप हैं। इन दोनों से दूषित वाणी के प्रयोग से वक्ता का ओज तेज नष्ट हो जाता है और कालांतर में वह किसी का भी

विश्वासपात्र और प्रीतिभाजन नहीं रहता। पतित अवस्था को प्राप्त होकर अपने सर्वस्व का नाश कर लेता है। वैदिक ऋषियों और महापुरुषों ने वाणी को वाह्य और आंतरिक रुप से शुद्ध और सुरक्षित रखने उसके अर्थ गाम्भीर्य और विशदता को बनाए रखने के लिए बहुत अधिक श्रम और तप किया है। इसके लिए शिक्षा शास्त्र व्याकरण और सूक्तियों की रचना की है। वैदिक ऋषि मुनि ही वास्तविक वाग्विज्ञान के अन्वेषक हैं। वर्तमान के तथाकथित भाषा वैज्ञानिक पूर्वाग्रह ग्रस्त पक्षपातपूर्ण बकवास को भाषा विज्ञान कहते हैं जो नितांत उपहासास्पद ही है। वास्तव में तो अभी तक वाक् विज्ञान पर बहुत कम कार्य हुआ है और वाणी का अनादर चरम पर है।

वाण्येका समलंकरोतिपुरुषम् ।
वाग्भूषणम् भूषणम् ।।

इति

– ✍ वेदप्रिय शास्त्री

सत्यं मातापिता ज्ञानं धर्मो भ्राता दया स्वसा ।
शान्तिः पत्नी क्षमा पुत्रः षडेते मम बान्धवाः।।

सत्य मेरी माता है, ज्ञान मेरा पिता है, धर्म मेरा भाई है और दया ही मेरी बहन हैं शांति मेरी पत्नी है और क्षमा मेरा पुत्र है– यह छः ही मेरे परिवार के सदस्य हैं ।

– चाणक्य नीति

बदलाव

वन्दना को बन्द करना व्यर्थ है,
वन्दना के स्वर बदलने पड़ेंगे।
एक दो से कार्य चल सकता नहीं,
अब तो सारे घर बदलने पड़ेंगे।।

वितरण व्यवस्था ही नहीं चलती यहां ईमान पर,
जुल्म ढाए जा रहा इन्सान ही इन्सान पर,
लेने– देने से न हो अवनति कहीं,
लेते– देते कर बदलने पड़ेंगे।।

आचरण अच्छा प्रजा, मंत्री, प्रधानों का नहीं,
दोष इसमें पार्टियों या संविधानों का नहीं,
टोपियां, कानून परिवर्तन नहीं,
मानवों के सर बदलने पड़ेंगे।।

हो रहा जग में चतुर्दिक,
अहं का ही बोलबाला,
न्याय, प्रेम, उदारता, सद्बुद्धि का निकला दिवाला,
क्या बनेगा स्वार्थपूर्ण विरोध से,
चिन्तनों के स्तर बदलने पड़ेंगे।।

यह प्रयोजनवाद, नीति, चरित्र का बजता ढिंढोरा,
ये समस्याएं न सुलझा सके भौतिकवाद कोरा,
धर्म की, भगवान की अर्थी सजाना मूर्खता,
प्रश्नों के उत्तर बदलने पड़ेंगे।।

पाशविक पथ की प्रशस्ता,
चल रही शिक्षा प्रणाली,
चापलूसी, स्वार्थ और विलासिता की नींव डाली,
"वेदप्रिय" को छोड़कर बाकी सभी,
दार्शनिक निर्झर बदलने पड़ेंगे।।

– ✍ वेदप्रिय शास्त्री

आस्था अनास्था के बीच भंवर में फंसे हैं जब तक

– ✍ अखिलेश आर्येन्दु

हिन्दी के महान् साहित्यकार डॉक्टर धर्मवीर भारती का काव्य नाटक अन्धा युग (1954) में मानव की प्रकृति और वृत्ति का वर्णन किया गया है। अन्धा युग में भारती जी ने लिखा है –जो सांस्कृतिक संकट महाभारत काल में था वैसा सांस्कृतिक संकट आज भी है। आधुनिकता के अन्धकार की कथा है अन्धा युग। एक चित्र देखिए–

उस दिन जो अन्धायुग अवतरित हुआ जग पर,
बीतता नहीं रह–रह कर दोहराता है,
हर क्षण होती है मृत्यु प्रभु की कहीं न कहीं,
हर क्षण अंधियारा गहरा होता जाता है।
हम सबके मन में गहरा उतर गया है युग /
अंधियारा है, अश्वत्थामा है, संजय है,
है दास वृत्ति उन दोनों वृद्ध प्रहरियों की।

अंतर्द्वंद हम सबके अन्दर आधुनिकता की धारा में समाज की समस्याओं को लेकर, संस्कृति के पतन को लेकर, मूल्यों के पतन को लेकर जारी है। इसके अतिरिक्त आस्था के पतन को लेकर, शुभत्व के पतन को लेकर और मनुष्यता के पतन को लेकर निरंतर चलता रहता है। हम बहुत बड़े आदमी हैं, यह दूसरों से बताते हैं। हम धनी हैं, दूसरों से बताते हैं। हम परोपकारी हैं, दूसरों से बताते हैं। हम उच्च शिक्षित हैं यह.भी दूसरों से बताते हैं। हम दूसरों से बता कर स्वयं को यह बताना चाहते हैं कि हम जो हैं वह दूसरा नहीं है। कहीं न कहीं यह अन्दर से टूटने का द्योतक है। यह टूटन द्वापर से प्रारम्भ हुआ और कलयुग में निरंतर आगे बढ़ता जा रहा है।

संघर्ष को कवि कुंवर नारायण ने अपनी कविता में लिखा है –

बाहर नहीं है संघर्ष यह, द्वंद प्रतिद्वंद,
घात प्रतिघात,.कहीं अंदर है।
यह समस्त विश्वरूप जो कभी कुरूप कवि सुन्दर है
बाह्य नहीं –– मानव का उथल–पुथल अंदर है।
आत्मा गगन स्थल /जहां तारावत ऊर्जा की स्फुलिंग
अणुगतियां अंकित हैं।

हम भौतिकता में इतने निमग्न हो गए हैं कि हमारा ध्यान ही नहीं जाता कि इसके अतिरिक्त भी कोई अलग दुनिया है। हम कैसा जीवन जीना चाहते हैं। हमारे जीवन का उद्देश्य क्या है, हम नहीं तय कर पाते, क्यों नहीं तय कर पाते, हमने कभी इस पर सोचा नहीं। बहुत ही अच्छी बात लिखी एक कवि ने –

केवल भौतिक शर्तों पर ही,
जीवन का कोई सांत्वना नहीं,
वह जीना मरने से बढ़ कर[
जिसमें कोई वैशिष्ट्य नहीं––कल्पना नहीं।

हम जो जीवन जीना चाहते हैं वह जीवन हमारा अपना है कि दूसरे का है ? भूमण्डलीकरण के इस युग में हमारा अपना शायद कुछ नहीं है। प्रकृति से हम इतने कटते गए और कृतिमता से इतने जुड़ते गए कि हम अन्दर से रिक्त हो गए। हमारे पतन का यह सबसे बड़ा कारण है। जीवन का आदर्श दूसरों में देखना चाहते हैं, स्वयं में आदर्श बनाया ही नहीं। दूसरों से अधिक अपेक्षा करते –करते हम अन्दर की समीक्षा करना भूल गए। हम यह क्या नहीं जानते कि विश्व मानवता के सामने सबसे बड़ा संकट मानवता के आधार का निरंतर खिसकते जाना है। फिर भी हम बड़े गर्व से कहते हैं ––21वीं सदी विज्ञान की है, विकास की है, उत्थान की है, ज्ञान की है, चेतना की है और उत्कृष्टता की है। शब्दों के जाल में हम इतने ज्यादा फंस गए हैं कि हम एक उटोपिया तैयार करते जा रहें हैं। आपने कभी सोचा और विचार किया कि हम आस्तिक हैं या नास्तिक? श्रद्धावान् हैं या अंधश्रद्धावान् ? ज्ञानवान् हैं या अज्ञानी हैं ? परोपकारी हैं या अपकारी हैं ? एक नारा कई दशक पहले समाजसेवी संस्थाओं ने उछाला था – *हम सुधरेंगे जग सुधरेगा!* आज भी उसी नारे को बहुत तेजी से बोलते हैं। न तो हम सुधर पाए न तो जग सुधर पाया। वास्तव में हमारी आस्था स्वयं से डगमगा चुकी है। हमारी श्रद्धा स्वयं से समाप्त हो चुकी है। अपने प्रति हम इतने बेईमान हो चुके हैं, इतने

असंवेदनशील हो चुके हैं कि हम कभी विचार ही नहीं करते कि हम वास्तव में क्या हैं और हमें क्या होना चाहिए। आज हम जो कुछ हैं, वह सब बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के बहुराष्ट्रीय मीडिया के द्वारा परोसी गई अपसंस्कृति की विकृति के एक अंग के रूप में हैं, एक भाग हैं। हम विज्ञापन देखकर तय करते हैं कि जीवन कैसा होना चाहिए, भोजन कैसा करना चाहिए, क्या पीना चाहिए, जिससे दिल भी ठण्डा हो जाए और शरीर भी ठण्डी हो जाए। कैसे बोलें कि हमारा जादू दूसरे पर चल जाए। उसमें चाहे सच्चाई हो या न हो, ऐसा क्या कुछ करें कि दूसरा कोई मेरे बारे में वाह–वाह करे। चाहे हमारे कर्मों में एक प्रतिशत सच्चाई न हो। वास्तविकता से हम कितने दूर जा चुके हैं ? तुर्रा यह है हम फिर भी स्वयं को उच्च शिक्षित, प्रगतिवान, विकास के लंबरदार और बहुत बड़ा स्वयं को साबित करने में लगे रहते हैं। यह सब क्यों ? इस पर कभी विचार किया ? नहीं न।

बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के मकड़जाल में विश्व इस तरह फंस चुका है कि वह वास्तविक जीवन की कल्पना भी नहीं करता। कल्पना, संवेदना, शुभत्व और सत्य जो हमारे जीवन निर्माण के अंग होने चाहिए, वह केवल शब्दों में लिखें रह गए हैं। किताबों में मिलते हैं। हम अपने जीवन में झांक करके देखें या दूसरे के जीवन में झांक करके देखें, हर जगह है एक शून्यता। रिश्तों में यह टूटन व विध्वंस जो है, हम कब तक टूटते रहेंगे ? तोड़ने वाली बहुराष्ट्रीय मीडिया, हमें तोड़ने वाली बहुराष्ट्रीय कम्पनियां विश्व के हर देश की सरकारों के मुट्ठियों में हैं। सब कुछ इस तरह से हौच–पौच हो चुका है कि वास्तविकता जीवन की चेतना से दूर जा चुकी है। हमारी सभ्यता और संस्कृति जिसके कभी उपाध्याय रहे हैं। अतीत पर गर्व करने के लिए बहुत कुछ है, लेकिन वर्तमान पूरी तरह से रिक्त और झंझावातों से भरा हुआ है। झंझावात हमें इस तरह से तोड़ते जा रहे हैं कि हम खण्ड–खण्ड होकर के भी अखण्ड होने का दम्भ भर रहे हैं। आखिर, यह झूठ कब तक और किससे? बाहर अंधकार है। जो नास्तिकता, अधर्म, पाप, कुकर्म अन्दर है वही बाहर भी है। अन्दर से अंकुरित हो कोई विचार बाहर कर्म के रूप में परिणत होता है। सत्य बात तो यह है कि हम आज सच्चे अर्थों में ढोंगी और पाखण्डी हैं। हम उन लोगों के अनुचर बन गए हैं जो स्वयं अंधकार में हैं। हम उन बाबाओं और महाराजों के पिछलग्गू हैं जिनका जीवन अत्यंत घृणित और विषयों से भरा हुआ है। ऐसे संवेदनहीन, मानवता के विध्वंसकारी बाबाओं, फकीरों, पादरियों, मौलवियों के हम भक्त बन कर अपनेपन का सर्वनाश करते रहते हैं। आज हमारी दशा अत्यंत विचित्र हो चुकी हैं। सद्‌गुरु के नाम पर जितना पाखण्ड, अंधविश्वास, छल, फरेब और ठगी परोसी जा रही है उतनी शायद 19वीं सदी में नहीं परोसी गई होगी। अधर्म और धर्म के बीच में जो अंतर है, उस अंतर को हमने समाप्त करने में ही अपनी भलाई देखी। सच्ची आस्था और अनास्था के बीच में जो अंतर है, उस अंतर को हमने इस लिए समाप्त कर दिया क्योंकि हम स्वयं के साक्षात्कार से बचना चाहते रहे। पाप और पुण्य के अंतर को हमने इसलिए भुला दिया क्योंकि किसी प्रकार का कर्म करने में जिससे हमें बाधा न पहुंचे। कोई अच्छा विचार हमें टोके न और इन पोपो, बाबाओं, मुल्ला, मौलवियों, पीरों, महाराजाओं और ग्रंथियों ने हमें वह रास्ता नहीं दिखाया जिस रास्ते पर चलकर के हमारे अन्दर पवित्रता के प्रति आस्था बढ़ती, सत्य के प्रति हमारी आस्था में वृद्धि होती। शुभ के प्रति हमारी आस्था में बढ़ोत्तरी होती। आनन्द के प्रति हमारी आस्था बढ़ती। मानव मूल्यों के प्रति हमारी आस्था और विश्वास बढ़ता। चरित्र निर्माण के प्रति हमारी आस्था बढ़ती। क्या हम इतने गए बीते हो गए हैं कि स्वयं को हमने दूसरे के हवाले (समर्पित) कर दिया। शायद हमारा अपना अब कोई वजूद नहीं बचा है। और जिसका कोई अपना वजूद नहीं होता वह मनुष्य के रूप में पशु से भी गया बीता है। आज करोड़ों की संख्या में ऐसे लोग हैं जिनका अपना कोई वजूद नहीं है, जो मूर्खता (वश), लाचारी, अशिक्षा या दबाव के कारण किसी ऐसे व्यक्ति के पिछलग्गू बन गए हैं जो किसी भी तरह से मनुष्य ही नहीं है। पापियों, अपराधियों, देश द्रोहियों और अधर्मियों को हम सद्‌गुरु मान बैठे हैं। कितने लोग सद्‌गुरु का मतलब जानते हैं? जब स्वयं को ही नहीं जानते, स्वयं को ही नहीं पहचानते, स्वयं की पड़ताल करना ही हम भूल गए तो सतगुरु को कैसे पहचानेंगे। सद्‌गुरु की पड़ताल, सद्‌गुरु की जांच कैसे कर सकते हैं। संत कबीर ने लिखा था – *''गुरु को ठोक बजा करके करना चाहिए।''* हम ठोकना बजाना ही भूल गए। ठोकने बजाने का अर्थ है– समझ बूझ कर और

उसके गुण–अवगुण को देख करके। बिना अच्छी तरह परखे किसी को गुरु या सद्गुरु नहीं बनाना चाहिए। सच्चे गुरु के पीछे ही अनुचर के रूप में चलना चाहिए। वैसे हर व्यक्ति अपना गुरु स्वयं है। आत्मा सबसे सच्चा गुरु है। परमपिता परमात्मा भी गुरु है। इन दोनों से बड़ा संसार में कोई तीसरा गुरु नहीं है, क्योंकि यहां से सभी चीजें हमें प्राप्त होती हैं, जो हमारे जीवन के लिए आवश्यक हैं। ऐसी कोई भी चीज नहीं है जिसके बारे में अन्दर से हमें प्रेरणा न मिलती हो। लेकिन हम अन्दर वाले गुरु और परमपिता परमात्मा जो गुरुओं का भी गुरु है की प्रेरणा को, उसके उपदेश को, जो वेद में अंकित है कभी भी समझने और विचार करने का प्रयास नहीं करते। अमल में लाने के लिए विचार नहीं करते। जीवन को हमने सौंप दिया उन बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के भंवर जाल में जिनका उद्देश्य केवल धन कमाना है। बहुराष्ट्रीय कम्पनी दवा बनाती है रोग ठीक करने के लिए। एलोपैथी से उसी रोग से दूसरा रोग पैदा होता है। फिर दूसरी दवा से इस रोग का निदान होता है। फिर उसी दूसरी दवा से एक दूसरा रोग पैदा होता है। अर्थात् रोग ठीक करने और पैदा करने का चक्र निरन्तर चलता रहता है। कहने का अर्थ है इस आर्थिक युग में कम्पनियों के मकड़जाल में हमारा जीवन इस कदर फंस गया है कि हम एक सच्चा पारदर्शी और संवेदना युक्त जीवन जीना ही भूल गए। हमारी कल्पना उस तरफ नहीं जाती जिससे जीवन में सत्य का आलोक फैले। हम ऐसे जीवन के सपने देखना भूल गए जो स्वयं के लिए पवित्र हो और दूसरों के लिए भी पवित्र हो। स्वयं के लिए कल्याणकारी हो और दूसरों के लिए भी कल्याणकारी हो। हर मनुष्य अन्दर से उतना ही अपूर्ण है जितना कि दूसरा अपूर्ण है। कहने का भाव यह है, हमारे भी अन्दर वही आत्मा है जो दूसरे के अन्दर है। यह विश्वास आज डगमगा गया है।

वेद में आत्म दर्शन के लिए ज्ञान को आवश्यक माना गया है। बिना ज्ञान के मुक्ति नहीं है। बिना ज्ञान के विकास नहीं है। बिना ज्ञान के कल्याण नहीं है। बिना ज्ञान के अमरत्व नहीं है। और हम सच्चे ज्ञान की आस्था से आंख मूंदे बैठे हैं। एक अन्धे की तरह हमारी दशा हो गई है। आंख रहते हुए भी अन्धे होना क्या यह प्रदर्शित नहीं करता कि हम अब मनुष्य से पशु की ओर चल चुके हैं। हम अन्दर झांकने की अपेक्षा बाहर ताक झांक करने की हमारी फितरत बन गई है। फिर भी हम विद्वान् हैं। ज्ञानवान् हैं। शिक्षित हैं। बहुत बड़े आदमी हैं। बड़ा कौन होता है इस पर विचार करके देखिए। बड़ा वह होता है जो अन्दर से बड़ा होता है। जो अन्दर से विशाल होता है। जो अन्दर से पवित्र होता है। जो अन्दर से ज्ञानी होता है। जो परोपकारी होता है। जो उदारवाद होता है। जो संवेदना से युक्त होता है। जो सद्भाव से परिपूर्ण होता है। अब आप देख लीजिए, इन सब में से आप क्या है। स्वयं से झूठ नहीं बोल सकते, तो बाहर झूठ क्यों बोलते हो ? जो सत्य नहीं है उसे सत्य के रूप में प्रस्तुत करके स्वयं को स्थापित करने की चेष्टा करना क्या मनुष्य का लक्षण है ? क्या हम फेंटेसी वाले जीवन को ही वास्तविक जीवन नहीं मान बैठे हैं? इस बात को आप कितना समझते हैं यह आप ही जानते हैं। समाज किधर जा रहा है। संस्कृति और धर्म की धाराएं किधर आगे बढ़ रही हैं। हमारा जीवन दर्शन किस तरफ आगे बढ़ रहा है। इस पर दृष्टिपात करिए। कठोरता से। मार्मिकता से और संवेदना से। आपकी प्रतीक्षा वे सभी लोग कर रहे हैं जो आपको जानना चाहते हैं। स्वयं पर आस्था रखते हुए बाहर आ कर देखिए। यह संसार जैसा आप देखते हैं वैसा ही है? या आप जैसा देख रहे हैं वैसा नहीं। इसलिए संसार के अनुसार बनने का प्रयास न करें। आप अपने अनुसार बनने का प्रयास करें। अपना निर्माण करें। आप का निर्माण आप स्वयं करेंगे। आपके संस्कार करेंगे। आपकी शिक्षा करेगी। आपकी विद्या करेगी। इसलिए ज्ञानी बनिए। ज्ञानी बन कर सभी आस्थावान जिज्ञासुओं की जिज्ञासा शांत करें। शायद विकट अंधकार में एक आशा की किरण दिखाई पड़े। लेकिन निराश नहीं होना है। आगे बढ़ते जाना है। उस ऊंचाई तक जहां पहुंच कर कर आप एक सच्चे अर्थों में मनुष्य होंगे। आप मनुष्य के रूप में, स्वयं में पूर्ण होंगे। परन्तु सावधानीपूर्वक आगे बढ़ना है। वहां पहुंचना है जहां पर आपको पहुंचने की आवश्यकता है। हम संघर्षों में अपना सच्चा रास्ता ही भूल जाए? महर्षि दयानन्द ने कहा है–

"सच्चा मनुष्य वह है जो ध्यान व ज्ञानपूर्वक कर्म करता है। करने के पहले सोचता है।" हम केवल अपने लिए ही नहीं अपितु अन्यों के लिए कार्य करें, क्योंकि यही मानव होने का लक्षण है। आप सद्भावना युक्त हों, आप ज्ञान युक्त हों, संवेदना युक्त हों, आप पवित्र

इन्हीं कामनाओं के साथ हों –

लो तुम संकल्प कि तुमको होना है उत्तीर्ण।
चाहे सब हों प्रतिकूल, नहीं होना तुमको अनुत्तीर्ण।
न हो जीर्ण न हो कीर्ण।

जीवन है धैर्य, निडरता और विनम्रता का नाम।
धर्माचरण करते हुए जीवन बिताना चाहिए।
विश्व एक परिवार है यह विचार होना चाहिए।

श्री कृष्ण सन्देश

विहाय कामान् यः सर्वान्, पुमान् चरति निस्पृहः।
निर्ममः निरहंकारः,सः शान्तिम् अधिगच्छति।।

(भगवद् गीता–2/71)

भावार्थ – *जो पुरुष सम्पूर्ण कामनाओं को त्यागकर स्पृहारहित, ममतारहित और अहंकाररहित होकर संसार में रहता है, ऐसा श्रेष्ठ साधक अपने जीवन में जीता हुआ परम शान्ति को प्राप्त करता है। योगेश्वर श्रीकृष्ण ने इस मानव –जीवन में जीते हुए परमदिव्य एवं परमानन्द के महासागर शान्ति में सदा और सतत अवगाहन करने के लिए त्रिविधि मंगलकारी महासूत्रों का उपदेश किया है।*

1. ***निस्पृह*** *:– स्पृहारहित होने का सतत अभ्यास करना। यह स्पृहा अर्थात् भोग की कामना और चाहना ही हमको संसार के बंधन में बार–बार बाँधती है। यह प्रबल आसक्ति ही अशान्ति का समुद् गम एवं मूल कारण है। हमको जीवन में अप्राप्त वस्तु,पदार्थों एवं अति लालसा की वृत्ति ही स्पृहा की जननी है।जो अपने प्रबल पुरुषार्थ एवं परमेश्वर की असीम अनुकम्पा से सम्प्राप्त है। उसमें निस्पृह एवं निरासक्त होकर जीवन जीने की कला सीखें।हम पहले से सम्प्राप्त साधनों का पर्याप्त लाभ नहीं लेते और प्रसन्न रहने का अभ्यास नहीं करते हैं।जो अप्राप्त की प्राप्ति हेतु अनवरत क्रंदन करना ही अशांति का कारण है। अपने प्राप्त साधनों में संयमित होकर रहना ही निस्पृह होने और शांति प्राप्त करने का प्रथम महासूत्र है।*

2. ***निर्मम*** *:– ममता, ममत्व, मोह आदि से निर्मुक्त होना ही निर्मम है। मम का अर्थ है – मेरा। यथार्थ में गतिशील और परिवर्तनशील संसार में मेरा सदा साथ देने वाला संगी और साथी कोई नहीं है। जिस शरीर को मेरा मानता हूँ। वह मेरा शरीर मेरे देखते–देखते प्रतिक्षण परिवर्तित हो रहा है। मेरे इस शरीर में रहते–रहते बाल्यावस्था, शैशवावस्था, किशोरावस्था, तरुणावस्था, युवावस्था और वृद्धावस्था आदि में अनवरत परिवर्तन हो रहा है। अपनी ही आँखों से अपना परिवर्तन प्रतिदिन देखता हूँ, विचलित होता हूँ, पर परिवर्तन की सनातन धारा को रोक नहीं सकता हूँ। इसलिए मम से निर्मम का मर्म मानें। मम से इदं न मम अर्थात् यह मेरा नहीं है। यज्ञाहुति के बाद उच्चारित इदं न मम जीवन की महानता का महागीत और महासूत्र है। इस प्रकार संसार में रहते,देखते,चलते और विविध क्रियात्मक कार्यों को निरंतर बाहर से करते हुए और अंदर से निर्मम, निर्लेप एवं निर्मोह होकर परम शांति से जीवन जियें।*

3. ***निरहंकार*** *:– अपने अहं, मैं पन का भाव ही अहंकार का जनक है और इस अहं के मिथ्या आकार से निर्गत होना ही निरहंकार है। अपने शरीर में अहंभाव एवं तादात्म्यभाव रखना ही अहंकार है। इस दृश्य शरीर और संसार से द्रष्टा होकर अनुभव करना ही निरहंकार की उच्चतम अवस्था है। इस अल्प शक्तिशाली और अल्पकालीन काया जो अनित्य, क्षण भंगुर एवं विनाशोन्मुख है। इसमें अति अभिमान, अति दर्प, अति स्वार्थ, अति क्रोध, अति मोह और अति विषयासक्ति अतिशीघ्र शमशान घाट की शरण में ले जाती है। यह अति का आक्रमण, अति का अनधिकार और अति का अतिमान अत्यधिक दुर्गति ही है। अतः इस मिथ्या अति अहं भाव,अहं के आकार एवं प्रकार से पूर्ण निकलकर निरहंकार होकर जीवन में सतत शांति के महासागर में स्नान करें।*

शान्ति ही समस्त समस्याओं का सर्वोच्च समाधान है।

SECOND ASHRAMA: GRIHASTHA ASHRAMA

– ✍ Dr. Roop Chandra 'Deepak'
Lucknow (U.P.)
Mob. 9839181690

The Second Ashrama of the Ashrama System under the Vedic Culture is the Grihastha Ashrama. It is more or less the married life or the family life with some high values. In this regard The Manusmriti (3-2) speaks :

वेदानधीत्य वेदौ वा वेदं वाऽपि यथाक्रमम्।
अविलुप्तब्रह्मचर्यो गृहस्थाश्रममावसेत्।।

[Having studied all the four Vedas, with Grammar and related texts, or three Vedas, or two, or at least one Veda, the young boy or girl, observing brahmcharya upto now, may seek his or her preceptor's permission to go back home, and enter into the married Family Life.]

What does this difference of four Vedas, three, two or one really mean? The study of four Vedas means the complete Vedic Wisdom required for a person to be a true Vedic Scholar. Study of Four Vedas also means knowledge for knowledge' sake, and the person who has earned it would impart it to others when time comes.

Three Vedas also means Vedas' sufficient knowledge, but not a full command over it. Men of three Vedas are also Vedic scholars working under the scholars of Top Degree. Two Vedas or one means having learnt the Grammar and understood the natures of God, Soul and the Matter. All people of society can never be equal in knowledge and wisdom. Those interested in agriculture, trade or warfare need basic knowledge of the Vedas and specific knowledge of their fields. But a basic knowledge of Vedas has been essential for one and all..

The word 'यथाक्रमम्' means that the study of four Vedas or one, should be according to the serial order and gradation of text books prescribed. Fortunately it is given in the Satyarth Prakash written by Rishi Dayanand. In fact, he gives two category of books. He starts the first category of books with Ashtaadhyaayi and includes Mahabhashya, Nighantu-Nirukt, Chhandashastra, Manusmriti, Ramayana, Mahabharata; the six systems of Vedic philosophy — Purva Mimansa, Vaisheshika, Nyaya, Yoga, Sankhya and Vedanta; the ten of Upanishads — Isha, Kena, Katha, Prashna, Mundaka, Mandukya, Aitareya, Taittiriya, Chhandogya and Brihadaranyaka; at least four Brahmanas and then Four Vedas. He fixes a time of fourteen years for this study.

Then he takes the second category of books on medical, military, political, judicial, economic and industrial education, music and astronomy. He fixes different time periods for them separately, making a total of sixteen years. To sum up, Rishi Daysnand counts the total time period for both categories, and gives it to be 21 years.

Rishi Dayanand had summed up the two periods to be 21 years. Some of the scholars summed up them to be 14+16=30; and made an unnecessary correction. In fact, the second category of books is optional. All students would not study all; but one would study this and the other would study that. One in a hundred would study all of them; but for him the education-life is 36 years, given somewhere else. It is requested here that Rishi Dayanand's account of 20 or 21 years may please not be miscorrected as 30 or 34 years.

Having received so much education as given above, the boy or girl may be permitted to get married. There are two things more, brahmcharya being the first. The boys and the girls are separate since the early age of childhood so that they could observe their brahmcharya spotlessly. Once they observe complete brahmcharya in their First Ashrama, they would be able to keep restraint in their Second Ashrama which is full of trying circumstances. This way a good married life must have a strong base with a view to attaining the Four Purusharthas.

Manusmriti (3-4) speaks:-

गुरुणाऽनुमतः स्नात्वा समावृत्तो यथाविधि।

[Having sought permission from the preceptor, and having completed their education] the boys and girls may get married. The preceptor's permission is the Second thing mentioned above.

Vedic Culture expects the boys and girls to be obedient to their parents and preceptors. The obedience to parents is general and not quite binding, as the son or daughter might be abler and better than the parents. But obedience to the preceptor is binding, as it is always related to the truth and righteousness.

If the preceptor wants the pupil to dedicate his life for the sake of the society and nation, the pupil must do this. This happened between Rishi Dayanand and his preceptor Swami Virajanand. If the pupil takes a vow to lifelong brahmcharya and somehow he wants to step back, he must narrate this to the preceptor and seek his approval for marriage. This happened between Hanuman's father Kesari and his preceptor Rishi Agastya.

Guru's permission is sought on two points, whether to marry or not, and whom to marry. It is not the modern time's feelings of a person that, it is my life, I shall decide whether to marry or not, or whomsoever to marry. Pupils' different course was possible but with Guru's approval and his pleasure. All this

was for everybody's well-being, individual and social, physical and spiritual, pertaining to this life and the next.

The two Gurus of the girls and boys consulted each other to make pairs for marriages. The two scholars better knew the qualities and natures of the couples than themselves. The individuals could misjudge each other for want of experience. Either of them could feel attracted towards external and temporary things. The parents have their own reservations for castes and wealth. These things can never and should never be the bases for making matches. Under these circumstances, the Guru's permission was required to leave his Gurukul and return to the family to lead a family life.

The Second Ashrama, based on a good First Ashrama, is to further one's life in the pursuit of Dharma-Artha-Kama-Moksha. Hence it is important for all, though not personally compulsory for all. It must start intelligently and with highest values in mind, since it nurtures all Ashramas.

तुभ्यं हि पूर्वपीतये देवा देवाय येमिरे ।
(ऋग १.१३.१)

हे देव! कर्मफल प्राप्ति के लिए विद्वान् तेरे प्रति समर्पण करते हैं ।

आर्ष क्रान्ति के सुधी पाठकों से

समाज सुधार, संस्कृति उन्नयन और धर्म जिज्ञासा क्षेत्र की अनेक पत्रिकाएं सोशल मीडिया पर आपने देखी और पढ़ी होगी । आर्ष क्रांति पत्रिका का तेवर और स्वरूप कैसा है इसे जानने की जिज्ञासा आपके मन में पैदा होती है, तो यह समझना चाहिए आप एक विचारवान और जिज्ञासु किस्म के बुद्धिमान व्यक्ति हैं । हमें आप जैसे क्रांतिकारी और प्रगति गामी विचारवान व्यक्ति का साथ चाहिए। फिर देर किस बात की । नीचे लिंक पर जाइए और फार्म भर कर हमें भेज दीजिए। अब आप जुड़ गए हैं ऐसी संस्था और पत्रिका से जो एक आदर्श समाज, उन्नतशील संस्कृति और मानव मूल्यों के धर्म की स्थापना के लिए कृतसंकल्प है । आप एक शुभ संकल्पवान व्यक्ति हैं और यह पत्रिका भी शुभ संकल्पों को मूर्त रूप देना चाहती है, एक आदर्श समाज निर्माण में हमारी संस्था और पत्रिका से जुड़कर आप अपना अमूल्य योगदान दे सकते हैं । आपका हमें इंतजार रहेगा।

इस लिंक पर क्लिक करके यह फार्म अवश्य भरें

http://bit.ly/aarshkranti

नोट - फॉर्म को भरने के लिए अपने मोबाइल/ कम्प्यूटर में इन्टरनेट अवश्य चालू रखे

आओ, वेदाध्ययन और वेदप्रचार करें

***१) वैश्वानरीं वर्चस आ रभध्वं, शुद्धा भवन्तः शुचयः पावकाः।
इहेडया सधमादं मदन्तो, ज्योक् पश्येम सूर्यमुच्चरन्तम्।।***

— अर्थव ६.६२.३

ऋषि — **अथर्वा** । देवता — **वैश्वानरः** ।
छन्द — **त्रिष्टुप्** ।

अन्वय — [हे भाइयो! तुम] (शुद्धाः) शरीर से शुद्ध, (शुचयः) मन से पवित्र तथा (पावकाः) पवित्रकर्ता (भवन्तः) होते हुए (वर्चसे) ज्ञान के तेज को पाने के लिए (वैश्वानरीं) वैश्वानर प्रभु से प्राप्त वेदवाणी को (आ रभध्वम्) पढ़ना आरम्भ करो। [इस प्रकार हम सब] (इह) इस जगत् में (इडया) वेद वाणी के द्वारा (सधमादं मदन्तः) एक—साथ आनन्द—लाभ करते हुए (उच्चरन्तं सूर्यम्) उदित होते हुए प्राकृतिक सूर्य को तथा अध्यात्म—सूर्य को (ज्योक्) चिरकाल तक (पश्येम) देखते रहें।

अर्थ — परम प्रभु 'वैश्वानर' हैं, सब मनुष्यों का हित चाहने और करने वाले हैं। उन्होंने सब मानव के कल्याणार्थ वेद वाणी का उपदेश किया है। अतः उनकी उपदिष्ट वेदवाणी 'वैश्वानरी', 'वैश्वानरी सूनृता' या 'वैश्वानरी इडा' कहलाती है। हे भाइयो! तुम आज से ही उस वेद वाणी का अध्ययन और मनन आरम्भ कर दो। पर वेद की पुस्तक हाथ में लेने से पूर्व तुम शारीरिक मलों को दूर करके शरीर से शुद्ध हो जाओ। काम, क्रोध, राग, द्वेष आदि के कलुषित विचारों को त्यागकर मन से पवित्र हो जाओ, ऐसे श्रद्धालु बन जाओ कि तुम्हें देख अन्य के चित्त में भी श्रद्धा और पवित्रता के भाव अंकुरित हों। सबसे पूर्व शुद्ध वेद पाठ का अभ्यास करो। परन्तु वेद का केवल पाठ पर्याप्त नहीं है, अर्थ ज्ञान की आवश्यकता है। जो वेद पाठ का ज्ञाता हो कर भी अर्थज्ञ नहीं है, वह उस भार—वाहक के समान है जिसने चंदन के भार को उठाया हुआ है, पर उस चंदन के महत्व और उपयोग को नहीं जानता। अर्थबोध होने पर ही वेद लता अपने सुरभित, सुमधुर पुष्प—फलों को और वेदवाणी—रूपिणी कामधेनु अपने सुमधुर पोषक दूध को प्रदान करती है। अतः अर्थबोधपूर्वक वेदाध्ययन कर वेदज्ञान के सुगंधित प्रसूनों से अपना श्रृंगार करो तथा स्वादिष्ट फलों से और अमृतमय दूध से तृप्ति लाभ करो। वेद के अध्ययन से तुम्हें वर्चस् प्राप्त होगा, समग्र सत्य ज्ञान का अनुपम तेज और ब्रह्म ज्ञान की दिव्य ज्योति उपलब्ध होगी।

आओ, हम सब मिलकर वेद पढ़ें, वेद की शिक्षाओं को ग्रहण करें और उससे आनन्द—लाभ करते हुए सुदीर्घकाल तक सूर्योदय के स्वर्णिम दृश्यों को देख—देख कर अपने आत्मा के अन्दर भी वेद वर्णित सूर्यों के सूर्य वैश्वानर प्रभु को उदित करते रहें।

***२) नकिर्देवा मिनीमसि नकिरायोपयामसि मन्त्रंश्रुत्यं चरामसि।
पक्षेभिरपिकक्षेभिरत्राभि सं रभामहे।***

— ऋ १०.१३४.७

अन्वय — हम (देवाः) देव [जन] (न—किः) न तो [किसी की मिनीमसि] हिंसा करते हैं [और] (न—किः) न ही [किसी को] (आ योपयामसि) बहकाते हैं। [हम तो] (मन्त्र—श्रुत्यम्) मन्त्र ज्ञान—वेद विहित—वेद विधान का (चरामसि) आचरते—आचरण में लाते हैं [और] (पक्षेभिः) सपक्षों—स्वपक्षों—स्वपक्षियों के साथ [तथा] (अपि—कक्षेभिः) वि—कक्षों—विपकक्षियों के साथ [तथा] (अत्र) यहां (अभि) अभितः, सर्वतः (सम् रभामहे) समारम्भ करते, मिलकर कार्य करते— चलते—व्यवहार करते हैं।

अर्थ — १) समस्त भूमण्डल पर वेदप्रचार करके अखिल मानवजाति को वैदिकधर्मी बनाने की साध को सफलता के साथ सिद्ध करने के उपाय इस मन्त्र में बताए गए हैं।

वैदिक धर्म के प्रचार के लिए, सर्वप्रथम, हमें स्वयं देव बनना चाहिए। देव कहते हैं क्रीडाशील, विनोदी,

प्रसन्नचित्त, विजयाकांक्षी, प्रकाशपुंज, प्रशंसनीय, आनन्दवृत्ति आत्मविश्वासी, स्वप्नद्रष्टा [महत्त्वाकांक्षी] शोभनीय, प्रगतिशील, विद्वान्, जितेन्द्रिय, ऋतुविद् [समय, अवसर और परिस्थिति को परखने वाले] ज्ञानी, सभ्य, आदाता [ज्ञान गुण, विद्या, धन को ग्रहण करनेवाले] दाता [प्राप्त ज्ञान, गुण, विद्या, धन अन्यों को देनेवाले] दिव्य व्यक्ति को। वेद की व्याप्ति के लिए हमें इन गुणों से युक्त होकर देव बनना होगा। वेदप्रचारकों को वेदविषयक पर्याप्त जानकारी होनी चाहिए। उन्हें वेदों का विद्वान् होना चाहिए। जो स्वयं वेदमन्त्रों के अर्थ और मर्म को नहीं समझता वह वेदप्रचार कर ही कैसे सकता है ? वेदप्रचारकों का आकर्षक और सौम्य होना भी आवश्यक है। उनकी मुखाकृति मनोहारिणी होनी चाहिए। उन्हें दिव्य, देदीप्यमान्, तेजस्वी, कान्तिमान्, कमनीय और भव्य होना चाहिए। उनका विजय और व्याप्ति की भावना से ओत–प्रोत होना भी अनिवार्य है। आनन्दवृत्ति, व्यवहारकुशल, उपाय–ज्ञ, प्रशंसनीय और प्रगतिशील होने के अतिरिक्त, वेदप्रचारकों को आचारवान्, चरित्रवान् और सदाचारी भी होना चाहिए। मन, वचन और कर्म की एकरूपता देवत्व का लक्षण है। विचार, वचन और आचार की समता के बिना वेदप्रचार में कोई स्थायित्व नहीं आ सकता।

२) वेदप्रचार के लिए, मन्त्र ने दूसरा उपाय बताया है, "हम न किसी की हिंसा करें न किसी को मूर्ख बनाएं, हम न किसी को सताएं न किसी को चिढ़ाएं"। किसी को सताना वा चिढ़ाना अभद्रता और अशालीनता का द्योतक है। हमें विश्व को वेदानुयायी आर्य बनाना है, देव बनकर विश्व को वेद का पुनीत पाठ पढ़ाना है, वेद की पावन संस्कृति मे मानव को सुसंस्कृत करना है और वेदाचार द्वारा इस महती मही को स्वर्ग बनाना है। तदर्थ न तो हमें हिंसासाधनों के अवलम्ब की आवश्यकता है, न किसी के घात–पात की। यह उदार और विशाल कार्य ओछे साधनों से सम्पन्न नहीं हो सकता। इसके लिए न तो हमें किसी का खण्डन करना है, न किसी को बहकाना है।

वाद–विवाद, खण्डन–मण्डन, कटाक्ष–आलोचना से न समाधान हुआ, न होगा। प्रचार की शैली ऐसी होनी चाहिए कि हमारे शब्द और कृत्य से, हमारे भाषण और व्यवहार से अन्यों को न किसी प्रकार का आघात पहुंचे, न उनमें हमारे प्रति प्रतिकूलता हो। प्रतिकूलता होने पर वे हमारे विरोधी होकर हमसे दूर होते चले जाएंगे। प्रचार की पद्धति ऐसी शालीन हो कि हमारे शब्द और कृत्य से अन्यों का समाधान हो, और उनके मनों में हमारे प्रति आदर और अनुकूलता हो। अनुकुलता होने पर, वे हमारे प्रशंसक होकर हमारे प्रति आकृष्ट होंगे। वेद की व्याप्ति के लिए हमें भद्र और शालीन बनना चाहिए।

३) मन्त्र ने वेदप्रचार का तीसरा साधन निर्दिष्ट किया है, वेदमन्त्रों में निहित वेद की शिक्षाओं पर आचरण करना।

श्रुति नाम वेद का है। प्रथम, हम वेदप्रचारक स्वयं वेदमन्त्रों की शिक्षाओं पर आचरण करें, वेदमन्त्रों में निहित उपदेशों के अनुसार वर्तें––वर्तावें। साचार उपदेश ही श्रोताओं के कानों को चीरता हुआ उनके हृदयों में पैठता है । आचरणापूर्ण उपदेश ही अभीष्ट परिणाम के चिर स्थापक होते हैं । आचारशील वेदोपदेशकों के वेदोपदेशों से ही यह संसार पुनः वेदमय बनेगा। आचारविहीन वेदोपदेशक तो नाटक के वे अभिनयकर्ता हैं जो श्रोताओं और दर्शकों को रिझा–लुभा तो सकते हैं पर वेदाचारी और वेदशील नहीं बना सकते। वेदमनीषियों ने कहा था, ***सत्यं वद, धर्मं चर*** (तैत्तिरीयोपनिषद् १.११); सत्य बोल, धर्म का आचररणा कर। सत्य बोलने का विषय है, धर्म आचरण का। उपदेशकों ने सत्य और धर्म, दोनों को ही वाणी का विषय बना लिया; यह भयंकर भूल है। आचारः परमो धर्मः (मनुस्मृति १.१०८); आचार ही परम धर्म है। शब्द केवल बोलना सिखाते हैं। वह आचार ही है जो धर्म की स्थापना करता है।

आचारहीनं न पुनन्ति वेदाः ; आचारहीन को वेद पवित्र नहीं करते हैं। आचारवान् को ही वेद पवित्र करते हैं। वेदाचार से जो अपने को पवित्र करते हैं वे ही वेदप्रचार करने के अधिकारी हैं। वेद की शिक्षाओं पर आचरण वे ही कर सकते हैं जो वेदों का अनुशीलन वा श्रवण करते हैं। वेदानुशीलन वा वेदश्रवण के बिना वैदिक शिक्षाओं का ज्ञान नहीं हो सकता, और बिना ज्ञान के आचरण असम्भव है। यह स्मरण रहे कि वेदानुयायियों के आचार को देखकर ही संसार वैदिक धर्म के प्रति आस्था अथ वा अनास्था करेगा।

हमारे जीवन को देखकर ही, विधर्मी ये हो रहे हैं मानव ।
है ऐसे अनुयायी जिस धर्म के, .नहीं कदापि वह धर्म अच्छा।

४) मन्त्र में वेदप्रचारार्थ चौथा आदेश है, हम 'पक्षियों–विपक्षियों के साथ घुल–मिलकर रहें।' विलगता और घृणा से हम अन्यों को अपने में न प्रविष्ट करा सकते हैं, न पचा सकते हैं। खान–पान और सामाजिक व्यवहार स्व, पर, सबके साथ निर्बाधतया होने पर ही वैदिक धर्म के प्रसार का मार्ग प्रशस्त होसकेगा। वेद की व्याप्ति के लिए हमें पक्ष–विपक्ष, स्व–पर, जाति–पांति, प्रान्त–प्रदेश, देश–विदेश की सीमाओं को लांघना होगा।

सोचते–विचारते रहने से काम न चलेगा। इस संसार में इधर–उधर, दाएं–बाएं झांकने से कुछ न बनेगा। सहयोग, साधन और अवसर कार्यक्षेत्र में उतरने पर अनायास ही प्राप्त हो जाएंगे, प्रतीक्षा करते रहने से नहीं। आओ, साचार संबल के साथ, सदाचार की उदात्त भित्ति पर स्थित होकर प्रचारक्षेत्र में उतरें और, जनता को अपने आचरण से प्रभावित करते हुए, प्रत्येक पक्ष तथा प्रत्येक कक्ष [कोटि] के व्यक्तियों को साथ–लेते हुए, वेदप्रचार के सत्य, शिव और सुन्दर यज्ञ को सुसम्पन्न करें। ************

(साभार – वेद मञ्जरी एवं वेदलोक पुस्तक)

प्रार्थना– अपने पूर्ण पुरुषार्थ के उपरान्त उत्तम कर्मो की सिद्धि के लिये परमेश्वर वा किसी सामर्थ्य वाले मनुष्य का सहाय लेने को "प्रार्थना" कहते हैं।

प्रार्थना का फल – अभिमान नाश, आत्मा में आर्द्रता, गुण ग्रहण में पुरुषार्थ और अत्यंत प्रीति का होना "प्रार्थना का फल" है।

– महर्षि दयानन्द सरस्वती

श्रावणी गीत

वेद ही जग में हमारा ज्योति जीवनसार है।
वेद ही सर्वस्व प्यारा, पूज्य प्राणाधार है।

सत्यविद्या का विधाता, ज्ञान गुरुगण गेय है।
मानवों का मुक्तिदाता, धर्म धी का ध्येय है।।।
वेद ही परमेश प्रभु का प्रेम पारावार है।।१।।

ब्रह्म कुल का देवता है, राजकुल रक्षक रहा।
वैश्य-वेश विभूषिता है, शूद्र-कुल स्वामी महा।।
वेद ही वर्णाश्रमों का आदि है आधार है।।२।।

श्रावणी का श्रेष्ठ उत्सव पुण्य पावन पर्व है।
वेद व्रत स्वाध्याय वैभव, आज ही सुख सर्व है।।
वेदपाठी विप्रगण का दिव्य दिन दातार है।।३।।

वेद का पाठन पठन हो, वेद-वाद विवाद हो।
वेद हित जीवन मरण हो वेद-हित आह्लाद हो।।
आर्यजन का आज से व्रत विश्व वेद-प्रचार है
।।४।।

'विश्व भर को आर्य करना' वेद का सन्देश है।
'मृत्यु से किञ्चित् न डरना' ईश का आदेश है।।
सृष्टि सागर में हमारा, वेद ही पतवार है।।५।।

रोज-रोज सरोज सम श्रुति सूर्य सी खिलती रहें।
वेद-चन्द्र चकोर हम, द्युति मोद से मिलते रहें।।
वेद ही स्वामी सखा सब वेद ही परिवार है।।६।।

–✍ श्री सूर्यदेव शर्मा,एम.ए.

रक्षाबंधन : संस्कृति, शिक्षा और स्वाध्याय का पावन पर्व

यह कहावत सनातन काल से प्रचलित है कि बरसात का महीना सभी महीनों का आधार है। क्यों आधार है, इसके लिए हमें श्रावणी, कृष्णजन्माष्टमी, रक्षा बंधन और भईयादूज जैसे भारतीय पर्वों की महत्ता को समझने की जरूरत है। ये सभी त्योहार किसी न किसी विशेष विषय या घटना से जुड़े हुये हैं। श्रावणी का मायने श्रवण करना। चूंकि बरसात में कृषि का कार्य पूरा हो चुका होता और किसान खरीफ की फसल की बिजाई करके फुरसत में हो जाता है, ऐसे में धर्म–कर्म के अलावा जीवन और समाज को बेहतर बनाने के लिए स्वाध्याय का वक्त मिल जाता है। सनातन काल से श्रावणी का मतलब वेदों का पठन–पाठन का काल माना जाता रहा है। वेद पढ़ने का अधिकार वेदों में ही मानव मात्र को दिया गया है, इस लिए श्रावणी में समाज का हर वर्ण स्वाध्याय करना अपना पावन कर्त्तव्य मानता रहा है। वेद ज्ञान के भंडार हैं। दुनिया को ज्ञान, कर्म, उपासना और विज्ञान का ज्ञान वेदों से ही सबसे पहले हासिल हुआ। इसके बाद लोगों ने वेदों के सहारे आगे बढ़ना शुरू किया। जर्मनी, जापान, रूस, इंग्लैड और दुनिया के दूसरे तमाम देशों में आज भी वेदों के अनेक अधिकारी विद्वान् हैं।

वेदों का पठन–पाठन मुख्य रूप से गुरुकुलों में हुआ करता था। ऐसी परंपरा थी कि गुरुकुल में योग्य बालक को उसकी योग्यता और स्वभाव के मुताबिक उसे जनेऊ यानी यज्ञोपवीत देकर उसे 'द्विज' बनाकर शिक्षा देता था। द्विज का मतलब जिसका दूसरा जन्म हुआ हो। गुरु के आश्रम में यज्ञोपवीत के बाद बालक का दूसरा जन्म होता है। गुरु बालक या बालिका की योग्यता और स्वभाव के मुताबिक उसके वर्ण का निर्धारण किया करते थे। इससे ऊंच–नीच का कोई भेदभाव नहीं रह जाता था। यज्ञोपवीत देने के बाद हर व्यक्ति द्विज बन जाता है, वह चाहे किसी भी वर्ण का हो। और श्रावणी में द्विज को यानी जो यज्ञोपवीत धारण किया हुआ होता था, उसे वेदों का पठन–पाठन करना उसका सबसे पावन कर्तव्य माना जाता था। गृहसूत्रों में यज्ञोपवीत और संस्कारों के बारे में विस्तार से वर्णन किया गया है।

यज्ञोपवीत – यज्ञोपवीत में तीन धागे होते हैं। इसे त्रिसूत्र भी कहते हैं। ये तीन सूत्र माता–पिता, आचार्य और ऋषि या देव ऋण का याद दिलाते हैं। ये तीन ऋण हर इंसान के ऊपर तब तक होते हैं जब तक वह उपरोक्त श्रद्धायुक्त व्यक्तियों के प्रति अपने सारे कर्त्तव्य पूरे नहीं कर लेता है। वैदिक धर्म के सोलह संस्कारों में यज्ञोपवीत संस्कार भी एक अति महत्त्वपूर्ण संस्कार है। यज्ञोपवीत पहनने वाले व्यक्ति से यह आशा की जाती है कि वह पारिवारिक, सामाजिक, धार्मिक, आध्यात्मिक, वैज्ञानिक, शैक्षिक, राजनैतिक और अन्य सभी तरह के दायित्वों का वह ईमानदारी से और कर्तव्यनिष्ठा से पालन करेगा। यज्ञोपवीत धारण करते वक्त संकल्प भी इन्हीं दायित्वों को पूरा करने के लिए कराया जाता है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र सभी वर्णों को वैदिक धर्म में यज्ञोपवीत पहनने का अधिकार है। यज्ञोपवीत को उपनयन भी कहा जाता है। उपनयन का मतलब होता है 'प्राप्त करना' और 'पास ले जाना' है। यानी जो अभी तब न प्राप्त कर सका हो वह उपनयन धारण करके प्राप्त किया जा सकता है, और जिसके पास 'हम न जा सकते हों' उसके पास आंख के सहारे चले जाते हैं। उपनयन शब्द में 'नयन' शब्द भी है। इसका भी मायने दूर की वस्तुओं को प्राप्त करना। जैसे आंख से हम सारे भौतिक संसार का दर्शन करते हैं वैसे ही उपनयन धारण करने के बाद व्यक्ति अपने सारे दायित्वों को पूरा करने के लिए 'मान्य' बना दिया जाता है।

भारतीय संस्कृति की सबसे बड़ी खूबी यह है कि यह वैज्ञानिक विधियों पर आधारित है। श्रावणी का महत्त्व भी

इसी तरह वैज्ञानिक है। श्रावण यानी सावन के महीने में विशेष तरह के यज्ञों का प्रावधान रहा है। यह इस लिए जिससे वातावरण में विषैली गैसों और विषैले कीड़ों से प्राणिमात्र की रक्षा हो सके। श्रावण महीने में जिन यज्ञों के आयोजन के प्राविधान शास्त्रों में किए गए हैं उनमें 'चतुर्वेद परापण महायज्ञ' भी बड़े महत्त्व के हैं। चारों वेदों में चार तरह के प्रमुख विषय है। इसमें अथर्ववेद में चिकित्सा का वर्णन किया गया है। इसमें जिन मंत्रों से यज्ञों में आहुति दी जाती है उनमें अथर्ववेद के भी वे मंत्र होते हैं जो पर्यावरण, शारीरिक, मानसिक और आत्मिक दुखों से छुटकारा दिलाने वाले प्रमुख होते हैं। इनमें जो आहुति दी जाती है उनमें उन औषधियों यानी जड़ी–बूटियों का इस्तेमाल किया जाता है जो सीधे–सीधे इंसान के कई तरह से फायदा पहुंचाते हैं। इसे देखते हुए अमेरिका, फ्रांस और जर्मनी में पिछले कई सालों से यज्ञों के वैज्ञानिक महत्त्व पर खोज चल रही है।

श्रावण और श्रावणी का महत्त्व धार्मिक और आध्यात्मिक ही नहीं है बल्कि सांस्कृतिक चेतना जगाने के लिए यह सबसे बढ़िया अवसर होता है। इस महीने में ही नागपंचमी और रक्षाबंधन जैसे धार्मिक और सांस्कृतिक चेतना जगाने वाले त्यौहार मनाए जाते हैं। लेकिन इसका वैदिक स्वरूप इससे अलग तरह का है। श्रावणी की शुरूआत वेद मंत्रों के पाठ से करने की वैदिक परंपरा है। वेद मंत्रों के उच्चारण के पहले नया यज्ञोपवीत धारण करना जरूरी होता है। जो भी व्यक्ति वेद मंत्रों का पाठ कर सकते हैं उन्हें यज्ञोपवीत यानी जनेऊ जरूर पहनना चाहिए। यह जनेऊ रेशम, सूत, चांदी और सोने की भी हो सकती है। इनका असर हमारे दिल–दीमाग और शरीर पर अलग–अलग तरह से होता है।

महोत्सव पर्व – श्रावणी का मतलब ही होता है 'महोत्सव का पर्व'। हर दिन कोई न कोई उत्सव गली–मुहल्ले में होता दिखाई देता है। नये कपड़े, नये फल, बतासा, मिठाई और खीर खाना अच्छा माना जाता है। यज्ञ की बेदी पर बैठकर यज्ञ करने का महत्त्व तो दूसरा ही है। वैचाारिक रूप से श्रावणी मनाने का मुख्य मकसद अपनी संस्कृति, धर्म, अध्यात्म और राष्ट्रहित पर चिंतन करना है। वेद पाठ इस माह में महा पुनीत कहकर पुराणों में वेद पाठ करने के लिए प्रेरणा दी गई है।

स्वाध्याय का महीना – श्रावणी से स्वाध्याय करने की एक वैदिक परंपरा रही है। खासकर वेदों के स्वध्याय की। कहा जाता है कि श्रावण मास में वेद पढ़ने–पढ़ाने वाला व्यक्ति पूजा के काबिल होता है। स्वध्याय का मतलब अपना अध्याय याद करना। अपना अध्याय यानी आत्म चिंतन करना। स्वाध्याय के साथ ही साथ आत्म–चिंतन भी श्रावण मास में विशेष करना चाहिए। साथ ही दान–पुण्य करके विद्वानों और असहायों को अपने कर्त्तव्य का निर्वाह करना चाहिए। जहां भी वैदिक पुण्य यज्ञों का आयोजन हो उसमें भागीदारी करके अपने जीवन को सार्थक करने का इस माह में विशेष अवसर मिलता है। सावन में आहार–विहार का विशेष ध्यान रखना चाहिए। क्योंकि इस महीने में सेहत खराब होने के चांस अधिक होता है।

इस तरह हम देखें तो श्रावणी एक पर्व, एक उत्सव, एक त्योहार और एक परंपरा है जिसका पालन हर भारतीय को अपने, समाज और देशहित में करना चाहिए। ****

आर्ष क्रान्ति पत्रिका के लिए आर्य लेखक बन्धु अपनी सर्वश्रेष्ठ रचनाएँ भेंजे।

छः दर्शनों में परस्पर विरोध व अविरोध पर विचार

प्रस्तुति – प्रियांशु सेठ
वाराणसी

[आर्यसमाज के महान् शास्त्रार्थ महारथी पण्डित शिवशंकर शर्मा 'काव्यतीर्थ' द्वारा गुरुकुल कांगड़ी के द्वितीय दिवस के अधिवेशन मार्च सं० १९६४ वि० में पढ़ा निबन्ध]
हिन्दी अनुवादक [संस्कृत से] – डॉ० प्रीति विमर्शिनी, पाणिनि कन्या महाविद्यालय (मोतीझील, वाराणसी)

छः दर्शनों को लेकर आज यहां पर विचार होगा, यह देखकर हमारे अन्तःकरण में अत्यन्त उल्लास उत्पन्न हो रहा है। प्रत्येक वर्ष यदि इसी प्रकार दोषज्ञ परीक्षक जन प्रेम से इकट्ठे होकर संसार के उपकार के लिए प्रमेय के निश्चय के लिए प्रयत्नशील हों तभी सन्तानों का पथ राजपथ के समान निरुपद्रव हो जायेगा, ऐसी मैं आशा करता हूं। मनुष्य स्वल्पज्ञ होते हैं इसलिए पग–पग पर स्खलित व भ्रमित हो जाते हैं इसमें सन्देह नहीं, किन्तु आज भी इस देश में स्वयं को सर्वज्ञ मानने वाले हजारों की संख्या में हैं यह इस देश का दुर्भाग्य ही कहा जायेगा।

भला ईश्वर की अनन्त विभूति का परिच्छेद करने में कौन समर्थ हो सकता है, परन्तु विशेष रूप से ज्ञान ग्रहण करने के लिए ही परमेश्वर ने इस मानवी सृष्टि की रचना की है, ऐसा मैं अनुमान करता हूं। इसलिए जितनी आयु हो तब तक यथाशक्ति ज्ञान की प्राप्ति के लिए ही हमें प्रवृत्त होना चाहिए, यह मेरी आग्रहपूर्वक सम्मति है। इसलिये आधुनिक लोगों के समान पुरातन पुरुष भी सर्वज्ञ नहीं थे, यह हमारा निश्चय है।

छः शास्त्रों का निर्माण करने वाले ऋषि जो उदार हृदय और स्वतन्त्र मति वाले थे, इन छः दर्शनों के माध्यम से संसार में इन्होंने संसार के उपकार के लिए अनुसन्धान मार्ग की एक नवीन परम्परा स्थापित की है। हम सर्वज्ञ हैं, हमारा ही ज्ञान सम्यक् ज्ञान से युक्त है इसलिए इसमें विवाद नहीं करना चाहिए, जैसा उपदेश हमने किया है आप सबको वैसा ही जानना और समझना चाहिए, यह कथन करने वाले कभी भी महाशय नहीं हो सकते। इसलिए विवेचन आरम्भ करने से पहले मैं विनयपूर्वक अपने लब्ध ब्राह्मणादि वर्ण विद्वानों परीक्षकों से निवेदन करता हूं कि पूर्व से और पूर्वतर शिष्टों के द्वारा परिगृहीत होने से इस विषय में शंका नहीं करनी चाहिए किन्तु जैसा आचार्यों ने अनुशासन किया है वैसा ही जानना–समझना चाहिए।

पूर्वाचार्यों का विशेष आदर होने, अधिक विज्ञान होने, सम्यक् दर्शन का सामर्थ्य होने, सिद्ध पुरुष होने, त्रिकालदर्शी होने आदि कारणों से तथा हम उसके विपरीत हैं, हमारे अन्दर वह ज्ञान सिद्धि आदि नहीं है। इस कारण हमें उनके कथन का निराकरण अथवा उनमें संशय करने की बात मन से भी नहीं सोचनी चाहिए क्योंकि ऐसा करने पर सत्यासत्य के विवेक का लोप हो सकता है। जैसा कि हम देखते हैं पूर्वाचार्य बाद के आचार्यों के द्वारा निगृहीत हो रहे हैं, जैसा कि यास्काचार्य, गार्ग्य और कौत्स के मत का प्रत्याख्यान करते हुए देखे जाते हैं।

श्रीमान् शंकराचार्य ब्रह्म की मीमांसा व्यतिरेक से अन्य जो सम्यक् दर्शन शास्त्रों की असारता का प्रदर्शन कर रहे हैं, स्वयं छहो दर्शन शास्त्र भी परस्पर वादों का प्रत्याख्यान करने वाले प्रतीत होते हैं। उदाहरणार्थ – *"न वयं षट्पदार्थवादिनो वैशेषिकादिवत्।"* मैं छह पदार्थवादी नहीं हूं वैशेषिक आदि के समान। *"नाविद्यातोऽप्यवस्तुना बन्धायोगात्।"* अविद्यारूप वस्तु से भी बन्ध का अयोग होने से यह मान्य नहीं आदि सूत्रों के द्वारा सांख्याचार्य, वैशेषिक तथा मायावाद पर आक्षेप नहीं करते हैं क्या? *"रचनानुपपत्तेश्च नानुमानम्।"* रचना की उपपत्ति न होने से यह अनुमान ठीक नहीं। *"पयोऽम्बुवश्चेत्तत्रापि"* यदि दूध और पानी के समान है तो वहां भी *"ईक्षतेर्नाशब्दम्"* *"महद्दर्विवद्वा हस्वपरिमण्डलाभ्याम्"* *"उभयथापि न कर्म्मातस्तदभावः"* इत्यादि सूत्रों को बनाने वाले वेदान्ताचार्य के द्वारा सांख्य, वैशेषिकादि आचार्यों की प्रगाढ़ युक्तियों से दृढ़ किये गए, आप्तजनों के द्वारा मोक्ष के साधन रूप में ग्रहण किये गए, तथा श्रुतियों, स्मृतियों के प्रमाणों से

प्रमाणित मतों को भी प्रत्याख्यान नहीं करते हैं। अस्तु, जिस देश में विचार स्वातन्त्र्य का अभिनन्दन नहीं अपितु निन्दा की जाती है वह देश कभी भी कल्याण की श्रेणिपरम्परा पर आरोहण करता हुआ अभ्युदय के पर्वत शिखर को नहीं प्राप्त कर सकता।

इस धराधाम पर जो भी आचार्य हुए वे या तो भगवान् के अवतार रूप में अथवा देवता के अंश के रूप में, जिस भी किसी प्रकार महान् अद्‌भुत रूप में स्वीकार करके ब्रह्म–ईश्वर के समान ही पूजा को प्राप्त करते हैं। इतना ही नहीं जैसे वेद के गम्य, मन्त्र, अथवा शब्द प्रत्याख्यान (खण्डन) के योग्य नहीं, विचार के योग्य नहीं उसी प्रकार इन आचार्यों के गम्य अथवा सूत्रादि प्रत्याख्यान अथवा मीमांसा (विचार) की आवश्यकता नहीं रखते, जब से ऐसी जन मानस ने धारणा बना ली है, तभी से ऋषि–महर्षियों के द्वारा इस देश पर अनुग्रह कृपा होनी रुक गई, वैचारिक उन्नति अवरुद्ध हो गई।

महर्षि व्यास साक्षात् भगवान् के अवतार, महर्षि कपिल भी व्यास के समान भगवान् के अवतार, पाणिनि मुनि तो साक्षात् शिव, महर्षि पतंजलि हजार फन गले शेषनाग, आचार्य भास्कर साक्षात् भास्कर सूर्य ही हैं, कालिदास भगवान् के पुत्र के समान, धन्वन्तरि समुद्र मन्थन से निकले हुए साक्षात् परमेश्वर ही मान लिये गये, इस प्रकार सभी प्राचीन विद्वान् देवताओं के अंश के रूप में ही स्वीकृत किये गये हैं किन्तु ऐसा मन्तव्य सर्वथा ह्रास एवं कुपथ की ओर ले जाने वाला ही है। ऐसा कहने का मेरा तात्पर्य यह कथमपि नहीं कि ये पूजा एवं आदर के योग्य नहीं अपितु हम इन प्राचीन आचार्यों को बार–बार नमस्कार करते हैं तथा हृदय से उनका अभिनन्दन करते हैं। किन्तु इन आचार्यों ने जैसा कहा उनको बिना विचार किये वैसा ही स्वीकार कर लेना, उन आचार्यों ने सब यथार्थ ही कहा है, कुछ भी अयथार्थ अथवा गलत नहीं है, प्राचीन आचार्यों द्वारा उक्त कुछ भी खण्डन अथवा विमर्श करने योग्य नहीं, हम ऐसा नहीं मानते, नहीं स्वीकार करते। अतः सभी उदार हृदय पक्ष प्रतिपक्ष से रहित होकर यथार्थ ज्ञान को प्राप्त करने के इच्छुक तथा सत्य को जानने के इच्छुक होने चाहिए, यही मैं यहां समुपस्थित सभी महानुभावों से प्रार्थना कर रहा हूं।

लोक में सुविख्यात छः श्रेष्ठ दर्शन हैं– सांख्य–योग, न्याय–वैशेषिक, कर्म्म मीमांसा एवं ब्रह्म मीमांसा। इनमें दोनों मीमांसा शास्त्र स्वतन्त्र रूप से किसी अपूर्व तथ्य को कहने में प्रवृत्त नहीं हैं। वेद तथा ब्राह्मण ग्रन्थों में समन्वय करने हेतु कर्म्म मीमांसा तथा वेद एवं उपनिषदों के समन्वय के लिए ब्रह्म मीमांसा है। इन दोनों ग्रन्थों के अध्ययन से ऐसा ही प्रतीत होता है। शेष सांख्य आदि चार दर्शन ग्रन्थ श्रुतियों के अनुकूल होते हुए भी परतन्त्र होकर नहीं अपितु स्वतन्त्र विचारों को प्रस्तुत करते हैं। इनमें सर्वप्रथम पदार्थों के विषय में कुछ कहता हूं। सांख्यों ने प्रधान एवं पुरुष ये दो ही पदार्थ स्वीकार किए हैं। इसमें ईश्वर का प्रतिषेध होने से योगदर्शन के मतानुयायी प्रधान, पुरुष एवं ईश्वर ये तीन पदार्थ स्वीकार करते हैं। महर्षि गौतम ने प्रमाण, प्रमेय, संशय, प्रयोजन आदि सोलह पदार्थ स्वीकार किए हैं तथा कणाद ने द्रव्य, गुण, कर्म्म, सामान्य, विशेष एवं समवाय ये छः पदार्थ स्वीकार किए हैं। कर्म्म मीमांसा में पदार्थों के परिगणन के विषय में कोई आग्रह नहीं है। कर्मनिरूपण में इसका औचित्य न होने से ब्रह्म मीमांसा तो एक ईश्वर (ब्रह्म) को ही मात्र पदार्थ स्वीकार करता है।

अब जीवात्मा के विषय में विचार प्रस्तुत करते हैं –

शरीर इन्द्रिय अस्थि पञ्जर का स्वामी, शरीर इन्द्रिय से अतिरिक्त, ब्रह्म से भिन्न नित्य जानने योग्य प्रमेय द्रव्य आत्मा है, यह सिद्धान्त वेदान्त मतानुयायियों से अतिरिक्त सभी आस्तिक दर्शन शास्त्रों का है, इसमें तो कोई सन्देह नहीं है, परन्तु उसका स्वरूप क्या है? अणु परिमाण है, अथवा मध्यम या महत्परिमाण है? सगुण अथवा निर्गुण है? सभी शरीरों में एक ही आत्मा है अथवा प्रतिशरीर भिन्न–भिन्न है? अनन्त है तथा नित्य चैतन्य है अथवा यदाकदाचित्–चैतन्य है? इन विषयों में सभी आस्तिक दर्शन शास्त्रों में परस्पर विरोध है या नहीं, प्रथम इसी विषय पर विचार करते हैं। इसमें सांख्य दर्शन का सिद्धान्त यह है कि जीवात्मा नित्य चैतन्य शुद्ध बुद्ध मुक्त स्वभाव रूप सर्वज्ञ विभु परिमाण वाला तथा अनेक है। चेतन होता हुआ भी जीवात्मा स्वयं कोई चेतना नहीं करता, यह सांख्यों का मत विचारकों को, परीक्षकों को आश्चर्यचकित करने वाला है। सांख्याचार्यों का यह अभिप्राय है कि यह जीवात्मा सुख के गुणों को स्वीकार न करने के कारण न सुखी है, न ही दुःखी है दुःख के धर्म्म को स्वीकार न करने के कारण। प्रयत्न आदि अन्य गुणों को भी स्वीकार न

करने के कारण प्रयत्नादि गुण वाला भी नहीं है। यह जीव कर्ता होता हुआ भी कुछ नहीं करता है, द्रष्टा होता हुआ भी कुछ नहीं देखता, भोक्ता होता हुआ भी कुछ उपभोग नहीं करता अर्थात् कर्तृत्व–द्रष्टृत्व–भोक्तृत्व आदि धर्म्म वास्तव में जीवात्मा के नहीं हैं, अपितु अचेतन बुद्धि में वर्तमान हैं, आत्मा में प्रतिफलित, प्रतिभासित होते हैं तथा आत्मा को कर्त्ता के समान, द्रष्टा के समान, भोक्ता के समान सुखी एवं दुःखी की भांति कर देते हैं। प्रथम दृष्ट्या सांख्यों का यह पक्ष हम लोगों के लिए दुर्बोध ही है। क्योंकि जीवात्मा देखता हुआ भी नहीं देखता, कर्ता हुआ भी नहीं करता आदि वाक्यों का क्या अभिप्राय सिद्ध होता है? यदि आत्मा स्वयं नहीं देखता है किन्तु बुद्धि देखती है और आत्मा में द्रष्टृत्व का उपचार होता है तो यहां यह प्रश्न होता है कि बुद्धि तो अचेतन है, वह कैसे देखेगी? अथवा आत्मा से कैसे निवेदन करेगी? निवेदन करके भी क्या करेगी? उससे क्या प्रयोजन सिद्ध होगा? क्योंकि आत्मा तो अविकारी है, विकार से रहित है। बार–बार निवेदन करने पर प्रार्थना करने पर भी, बोध कराने और भी जीव जड़ के समान कुछ नहीं बोलेगा; अतः निवेदन करना भी निष्प्रयोजन है। अहो! जीव चेतन होता भी कुछ नहीं करता, तथा अचेतन बुद्धि सब सम्पादित करती है, ये तथ्य किसको बुद्धिगम्य हो सकता है! तथा सांख्य के आचार्य आत्मा को नित्य चैतन्य स्वीकार करते हैं उनसे यह प्रश्न है कि सुषुप्ति एवं मूर्छा अवस्था में चेतन क्यों नहीं होता? इस सिद्धान्त को स्वीकार करने में बाह्य इन्द्रियों का अनर्थकत्व दोष उत्पन्न होता है। सुषुप्ति एवं मूर्छावस्था में विषयों के अभाव होने से चैतन्य की अनुभूति नहीं होती है, यदि ऐसा मानें तो यह भी युक्तियुक्त नहीं है क्योंकि उसी में अर्थात् आत्मा में ही सभी विषयों की उपलब्धि होने से। जीवात्मा विभु परिमाण है, सांख्यदर्शन का यह सिद्धान्त भी हमारे लिए दुर्बोध ही है। यदि एक–एक जीवात्मा सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को अभिव्याप्त कर ले तब तो जो आत्मा मुझमें है वही आत्मा तुम्हारे में होगा और वही आत्मा सूर्य–चन्द्रमा आदि सभी पदार्थों में होगा, उसी का एक भाग सूर्य की अग्नि से दग्ध होगा, एक अस्त होगा, सिंह में रहता हुआ आक्रमण करेगा, बकरी में रहता हुआ शान्त बैठेगा, और न ही कर्मफल भोग के लिए दूसरे शरीरों में जायेगा, न ही पुण्य भोग के लिए आवागमन करेगा, शरीर के मृत हो जाने पर भी वहीं रहेगा जहां पहले था, अचेतन लिङ्ग ही सर्वत्र गमनागमन करता है, इत्यादि सिद्धान्त किस पुरुष के बुद्धि में अनुगम्य हो सकेगा? तथा आत्मा का विभु परिमाण स्वीकार करके उसके विरुद्ध जीवात्मा का प्रति शरीर भिन्नत्व भी स्वीकार करते हैं, यह सांख्यमत भी दुर्ज्ञेय है। यदि जीवात्मा को विभु मानते हुए प्रति शरीर में भिन्न आत्मा स्वीकार करते हैं तो निम्नलिखित दोष क्यों नहीं उपस्थित होंगे? पहला एक के मृत होने पर सब मृत क्यों नहीं हो जाते? एक के दुःखी होने पर सब दुःखी क्यों नहीं होते? यदि इस विषय में वो ये कहते हैं कि ये उपाधिभूत लिङ्ग में ही सभी सुख–दुःख आदि हैं और वह उपाधिभूत लिङ्ग प्रति शरीर में भिन्न–भिन्न है अतः एक के विकृत होने पर भी दूसरा अविकृत = विकार रहित रहता है, यह भी संगत नहीं है क्योंकि उसी लिङ्ग से सभी आत्मा का सम्बन्ध है या नहीं? यदि है तो एक के दुःखी होने पर सब को दुःखी होना चाहिए, और यदि ये कहो कि जिस उपाधिभूत लिङ्ग से उपहित होकर आत्मा चेतन के समान कार्य करता है वही फल का भोक्ता है, यह भी असंगत है। क्योंकि जिस काल में एक जीवात्मा लिङ्गात्मक आमासित देह में अपनी चैतन्य की छाया को प्रतिफलित करता है उस समय क्या वहां स्थित अनन्त आत्माओं का अपना–अपना चैतन्य प्रतिबिम्ब प्रदान करने में क्या कोई प्रतिबन्ध या अवरोध है जिसके कारण से सभी जीवात्मा कर्म करने में असमर्थ होते हैं, ऐसी अवस्था में एक ही जीव के द्वारा उज्जवलित आरोपित लिङ्ग है अन्यों के द्वारा नहीं, इसका निर्धारण किस आधार पर करेंगे? और विभु परिमाण होने से गति के अभाव में सभी के द्वारा आरोपित लिङ्ग, सभी जीवों को एक साथ दुःखी या सुखी कर सकता है तथा एक के मरने पर सब मृत हो सकते हैं। जीवात्मा सर्वज्ञ है यह भी सांख्य का सिद्धान्त है तो जीवात्मा सभी काल में हर समय सब कुछ क्यों नहीं जानता? माया आदि से उपहित होने से यदि नहीं तो क्या कोई घर अथवा वस्त्रादि से आच्छादित होने पर ज्ञानी या अज्ञानी हो जाता है, पण्डित अथवा अपण्डित हो जाता है, ऐसा देखा है क्या? फिर तो विवाद भी नहीं हो सकता, चेतन आत्मा ही विवाद कर सकता है, मैं हूं, मैं नहीं हूं, मैं दुःखी, मैं सुखी आदि। अस्तु!

****

[***सन्दर्भ*** – सरस्वतीसम्मेलनस्य, प्रथम वार्षिक वृतान्तय प्रथम आवृत्त ; पृष्ठ २१–२६ ; सं० १९६४ वि० में कांगड़ी गुरुकुल सद्धर्म्मप्रचारक यन्त्रालय हरिद्वार से मुद्रित व प्रकाशित]

धर्म और नीति के युगांतरकारी महामानव भगवान् श्री कृष्ण

– प्रांशु आर्य

पांच हजार वर्ष पूर्व जब भारत के क्षितिज पर अधर्म, अन्याय, अनीति, अनाचार व अकर्मण्यता के काले बादल छाए हुए थे। जरासंध, कंस, शिशुपाल और दुर्योधन जैसे सत्ता लोलुप व अत्याचारी राजाओं के आतंक के कारण जनता घोर संकटों का सामना कर रही थी, पूर्व से पश्चिम तक राष्ट्र अनेकों टुकड़ों में विभाजित हो चुका था, चारों तरफ त्राहि त्राहि मची हुई थी उस समय धर्म, न्याय, नीति, सदाचार व कर्मण्यता के प्रतिरूप, किंकर्त्तव्यविमूढ़ हुए पाण्डवों की रक्त धमनियों में कर्मठता का उबाल लाने व उनका मार्गदर्शन करने वाले और अधर्मियों का वध कर खण्ड–खण्ड राष्ट्र को पुनः अखण्डता व एकता के सूत्र में बांधकर धर्मनीति व राजनीति के क्षेत्र में समग्र क्रान्ति का शंखनाद करने वाले महापुरुष थे – ***योगेश्वर भगवान् श्री कृष्णचन्द्र।***

भगवान् श्री कृष्ण महान् योगी, नीति निपुण, व्यवहारकुशल, राष्ट्रपुरोधा व्यक्ति थे। राष्ट्र, राष्ट्रवासियों की सुरक्षा, राष्ट्र की अखण्डता व सम्प्रभुता कृष्ण के लिए सर्वोपरि थी। व्यर्थ का रक्तपात उन्हें स्वीकार नहीं था। *'परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्'* कृष्ण की नीति है। और इसी नीति के तहत वे कंस का वध बिना किसी सेना व व्यर्थ रक्तपात के स्वयं ही करते हैं। जरासंध ने ८६ राजाओं को कैद कर विशाल सेना अर्जित कर रखी थी। यादवों की छोटी सी सेना के लिए उससे लड़कर जीतना सम्भव न था अतः यदुवंशियों की रक्षार्थ कृष्ण उन्हें मथुरा से द्वारिका ले जाते हैं। फिर जरासंध का वध भी भीम द्वारा बड़ी चतुराई व बुद्धि कौशल के साथ करते हैं। शिशुपाल के सौ अपराध पूरे होने तक वे उसे क्षमा करते हैं, तब भी न मानने पर सुदर्शन चक्र चलाकर उसका वध करते हैं। इसी प्रकार कृष्ण दुर्योधन के हठी स्वाभाव व उसके सलाहकार शकुनि की कपट नीति से भी भली भांति परिचित हैं। किन्तु फिर भी शान्ति को सर्वोत्तम समाधान मानते हुए कृष्ण स्वयं शान्ति दूत बनकर के हस्तिनापुर जाते हैं। धृतराष्ट्र व दुर्योधन को समझाने के अनेक प्रयत्न करते हैं। इंद्रप्रस्थ न सही तो पांच गांव – श्रीपत, बागपत, सोनीपत, पानीपत और तिलपत की मांग पाण्डवो के लिए कृष्ण दुर्योधन से करते हैं किन्तु अहंकार में चूर दुर्योधन के ये कहने पर कि – *सूच्याग्रं नैव दास्यामि बिना युद्धेन केशव।*

हे केशव, बिना युद्ध के सुई के नोक बराबर जमीन भी न दूंगा तब राष्ट्रकवि दिनकर के शब्दों में कृष्ण ने दुर्योधन को अंतिम चेतावनी देते हुए कहा था –

याचना नहीं अब रण होगा,
जीवन जय या कि मरण होगा।

————————

दुर्योधन रण ऐसा होगा,
फिर कभी नहीं जैसा होगा।

कृष्ण याचक है तो योद्धा भी है। कृष्ण सज्जनों का रक्षक है तो दुष्टों के लिए विनाशकारी भी है। सत्य तो यह है कि कृष्ण जैसा नीति का पण्डित, कृष्ण जैसा सदाचारी, कृष्ण जैसा व्यवहारकुशल, कृष्ण जैसा वेद विशारद, कृष्ण जैसा गौ का प्रेमी, कृष्ण जैसा यज्ञ प्रेमी, कृष्ण जैसा योगीराज, कृष्ण जैसा पुरुषोत्तम, कृष्ण जैसा राजनीतिज्ञ, कृष्ण जैसा कूटनीतिज्ञ, कृष्ण जैसा उपायज्ञ, कृष्ण जैसा धर्मरक्षक, कृष्ण जैसा साम्राज्य निर्माता, कृष्ण जैसा विद्वान्, कृष्ण जैसा बुद्धिमान्, कृष्ण जैसा बलवान्, कृष्ण जैसा ब्रह्मचारी, कृष्ण जैसा गृहस्थी, कृष्ण जैसा वानप्रस्थी, कृष्ण जैसा सुदर्शन चक्र धारी, गीता का रचैय्या सारे संसार के इतिहास को देखने पर भी दूसरा दिखाई नहीं देता। युधिष्ठिर के राजसूयज्ञ में कुरुवंश के वयोवृद्ध, ज्ञानवृद्ध प्रधान पितामहः भीष्म उनके चरित्र का यशोगान करते हुए कहते हैं –

वेद वेदांग विज्ञानम् बलम् चाप्यधिकं तथा ।
नृणां लोके हि कोन्योस्ति विशिष्टः केशवादृते।।
(सभापर्व – ३८/१६)

"वेद और वेदांगो का उन्हें सम्पूर्ण रीति से ज्ञान है,

बल में वे किसी से कम नहीं है। इस लोक में आज कृष्ण से भिन्न दूसरा कौन विशिष्ट गुणों का आगार होगा।''

गीता के श्रोता व वक्ता सञ्जय श्री कृष्णा के विषय में कहते हैं –

यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः।
तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम।।

(गीता – १८/७८)

''जहाँ योगेश्वर श्रीकृष्ण हैं और जहाँ धनुर्धारी अर्जुन है वहीं पर श्री, विजय और अटूट नीति है। ऐसा मेरा मत है।''

किन्तु दुर्दिन और दुर्भाग्य इस देश का ये है कि कृष्ण के इस सुन्दर, महान्, बहुगुणों से सुसज्जित चरित्र और क्रान्तिकारी स्वरूप को राष्ट्र के सामने कभी प्रस्तुत ही नहीं किया गया। जो प्रस्तुत किया गया वह अत्यन्त ही निकृष्ट व शर्मनाक है। संसार की कोई भी सभ्य जाति, कोई भी सभ्य पुरुष उसे स्वीकार नहीं कर सकता। वह स्वरूप है पुराणों द्वारा वर्णित कृष्ण का। औरतों के कपड़े चुराने वाला चोर, लम्पट, छलिया, दुराचारी, व्यभिचारी, कुब्जा से घिरा हुआ, रास रचाने वाला, चूड़ी बेचने वाला, रणछोड़, माखनचोर और न जाने वह ऐसा कौन सा दोष होगा जो पुराणकारों और आज के इन धूर्त कथावाचकों ने कृष्ण के ऊपर न मढ़े हों। राधा जैसा एक पूर्ण कपोल कल्पित स्त्री तक का नाम उसके साथ जोड़ दिया गया। संसार में वस्तुतः ऐसी कोई सभ्य जाति नहीं होगी जिसने अपने महापुरुषों का ऐसा घोर अपमान किया हो जैसा इन पौराणिक कथावाचकों व पुराणों के रचयिताओं ने कृष्ण का किया है। किन्तु 'सौभाग्य सब दिन नहीं सोता है और सौभाग्य से आधुनिक भारत में ***महर्षि दयानन्द*** का पदार्पण होता है और वह वेदव्यास वर्णित महाभारत के आधार पर कहते हैं ***–''देखो श्री कृष्ण जी का इतिहास महाभारत में अत्युत्तम है। उनका गुण, कर्म, स्वभाव और चरित्र आप्त पुरुषों के सदृश है, जिसमें अधर्म का आचरण अर्थात् श्रीकृष्ण ने जन्म से मरण पर्यन्त बुरा काम कुछ भी किया हो, ऐसा नहीं लिखा। परन्तु इस भागवत वाले ने अनुचित मनमाने दोष लगाए हैं। इस को पढ़–पढ़ा और सुन–सुना कर अन्य मत वाले लोग श्रीकृष्ण जी की बहुत सी निंदा करते हैं। जो यह भागवत न होता तो श्रीकृष्ण जी के सदृश महात्माओं की झूठी निंदा क्यों कर होती ?''*** आगे वे दया का सागर जिन्हें स्वयं को जहर देने वाले पर भी क्रोध न आया वे दयानन्द अत्यन्त कठोर शब्दो में लिखते हैं– ***''अच्छा होता अगर यह भागवत पुराण के बनाने वाला बोपदेव अपने मां के गर्भ में ही मर गया होता तो कृष्ण के ऊपर आज ऐसे लांछन न लगते।''*** वस्तुतः आज हम ऋषि दयानन्द की इस कालजयी वाणी के आधार पर यह घोषणा पूर्वक कह सकते हैं कि *'संसार के समरांगण में अपने निष्कलंक व धवल चरित्र के साथ कोई महापुरुष आज सुशोभायमान हो रहा है तो वे हैं* ***भगवान् श्रीकृष्ण।'***

अतः देर अब भी नहीं हुई है, जब जागो तभी सवेरा है। इस लेख में हमने श्री कृष्ण के दोनों स्वरूपों की कुछ – कुछ झांकी आपके सम्मुख रख दी है। अब निर्णय आपका है कि आप किसे मानना चाहेंगे ?

अन्त में पण्डित चमूपति के शब्दों में हम इतना ही कहेंगे कि –

पाठक! परख! निष्पक्ष होकर परख! निर्दय होकर परख! सोना तेरे सम्मुख है, इसे जाँच! इसे आँक! खरा हो तो ले जा, नहीं तो सुवर्णकार को लौटा दे। आँकने से और नहीं, सोने का ज्ञान तो बढ़ ही जाएगा।

****

कृते प्रतिकृतं कुर्याद् हिंसने प्रतिहिंसनम्
तत्र दोषो न पतति दुष्टे दुष्टं समाचरेत्

– चाणक्य नीति १७.२

जैसे के साथ तैसा का व्यवहार करना चाहिए। उपकारी के प्रति प्रत्युपकार और हिंसक के प्रति हिंसा का व्यवहार करना चाहिए। ऐसा करने से कोई दोष नहीं लगता, क्योंकि दुष्ट के साथ दुष्टता का व्यवहार ही उचित होता है।

मानव सभ्यता के महान् मार्गदर्शक श्री अरविन्द

श्री अरविंद घोष की शिक्षा भी इंग्लैण्ड में हुई थी। इससे वे पाश्चात्य संस्कृति, शिक्षा और विचारों के कायल हो गए थे, भारत आकर उन्होंने देश की सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, धार्मिक और आध्यात्मिक दशा को देखकर, उन्होंने भारत मां की सेवा करने का निश्चय किया। इंग्लैण्ड में इनके पिता इन्हें शिक्षा के दौरान बहुत कम पैसा भेजते थे, लेकिन ये उसमें ही काम चला लेते थे। मितव्ययता का पाठ इन्होंने शिक्षा प्राप्ति के दौरान ही पढ़ लिया था। इंग्लैण्ड से लौटने के बाद पिता की आज्ञा के अनुसार वे आई.सी.एस की लिखित परीक्षा में विशिष्टता के साथ उत्तीर्ण हुए, लेकिन घुड़सवारी में उत्तीर्ण न हो पाने के कारण इन्हें नौकरी के योग्य न समझा गया। कहा जाता है कि ये अंग्रेजी शासन में नौकरी नहीं करना चाहते थे इस लिए जानबूझ कर घुड़सवारी की परीक्षा में असफल हुए। अंग्रेजी रंग में पिता ने रंगने में कोई कोर कसर न छोड़ी लेकिन इनके ऊपर ईसाइयत का रंग न चढ़ सका।

1891 में 'इंडियन मजलिस' नामक संस्था की स्थापना के बाद श्री अरविंद उसके सम्पर्क में आए। जिससे इनके ऊपर भारतीय स्वाधीनता का रंग धीरे–धीरे चढ़ता गया। इन्होंने 1893 से 1907 तक बड़ौदा नरेश की सेवा की। जहां इन्होंने अनेक महत्त्वपूर्ण पदों पर कार्य किये। इसके बाद इन्होंने बंगाल और अन्य कई स्थानों पर रहकर देश और समाज की सेवा की। श्री अरविंद का राजनीतिक जीवन तो बमुश्किल चार–पांच वर्ष का ही रहा, लेकिन इस अल्पावधि में अनेक महत्व के काम किये। राजनितिक क्षेत्र के अलावा अरविंद नेशनल कॉलेज में प्राचार्य के पद पर रहे, इसके बाद उन दिनों के प्रसिद्ध साप्ताहिक पत्र ' वंदेमातरम्' के सम्पादक जैसा महत्त्वपूर्ण पद सम्भाला। इस पत्र के माध्यम से श्री अरविंद के क्रांतिकारी विचार जनसामान्य तक निरंतर पहुंचते रहे। 1906 में सूरत कांग्रेस के अवसर पर श्री अरविंद को इस गर्म दल का अध्यक्ष चुना गया। इन्होंने अब देश की स्वतंत्रता के लिए ओजस्वी भाषण देना शुरू किया। जिससे आजादी के दीवाने अनेक युवा इन्हें अपना नेता मानने लगे। पत्रकारिता के दौरान अरविंद ने वंदे मातरम् के अलावा कर्मयोगी, धर्म, युगान्तर आदि अनेक पत्रिकाओं का संपादन किया। उन्होंने अंग्रेजो से शिक्षा मांगने की जगह स्वातंत्रता के लिए संघर्ष का नारा बुलंद किया। महर्षि अरविंद का विचार था –'स्वतंत्र–राष्ट्र जीवन का प्राण है और प्राणों पर ही आक्रमण हो रहा हो, जब गला दबाकर दम घोटने की कोशिश की जा रही हो, तब आत्मरक्षा के सभी उपाय न्यायसंगत और उचित हैं। दबाव के अनुरूप ही प्रतिरोध भी होता है।''

वंदेमातरम् में प्रकाशित विचारों और अलीपुर बम केस के सिलसिले में वह 5 मई 1908 को सबेरे सोते समय ही गिरफ्तार कर लिये गये। प्रसिद्ध वकील चितरंजन ने इनकी पैरवी की और ये 13 अप्रैल 1909 को जेल से मुक्त कर दिये गये। एक वर्ष जेल में रहने के बाद श्री अरविंद ने देश की स्वतंत्रता की ज्वाला को और अधिक धधकाने के लिए दो समाचार पत्रों–'कर्मयोगिन' और 'धर्म' का प्रकाशन किया। जुलाई 1909 में सिस्टर निवेदिता ने श्री अरविद को एक संदेश भेजा जिसमें लिखा था–सरकार उन्हें यानी श्री अरविंद को बंदी बनाना चाहती है, और उन्हें देश निष्कासन का दण्ड मिलेगा। तत्कलीन परिस्थितियों को समझते हुए उन्होंने चुपचाप कलकत्ता छोड़ दिया और चंद्रनगर चले गए और फिर बाद में 4 अप्रैल 1910 को पाण्डिचेरी चले गए। पाण्डिचेरी आकर उन्होंने एक आश्रम की स्थापना की जो बाद में विश्व के दार्शनिकों के आकर्षण का केंद्र बन गया।

श्री अरविंद ने देश, समाज, संस्कृति, अध्यात्म और साहित्य के लिए अनेक तरह की 40 से अधिक पुस्तकें लिखीं। जिसमें उनका महाकाव्य सावित्री सबसे विशाल है। जिसमें 24 हजार पंक्तियां हैं विशेष रूप से विश्वभर में प्रसिद्ध हुआ। इसके अलावा दिव्यजीवन, वेद रहस्य पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध, गीताप्रबंध, भारतीय संस्कृति के अध्याय, मानव–चक्र, महर्षि दयानंद और अन्य अनेक पुस्तकें हैं। सभी पुस्तकें अंग्रेजी भाषा में लिखीं लेकिन सभी का हिंदी में अनुवाद हो चुका है।

देश की स्वतंत्रता के विशेष अवसर पर अरविंद ने पांच मुख्य बातें की जिसमें कुछ विचारों पर विशेष जोर दिया। इसमें 1–एकता द्वारा भारत के भविष्य को महान् बनाना, 2–एशिया के लोगों की उन्नति तथा स्वतंत्रता द्वारा मानव–सभ्यता में योगदान, 3–मानव–जाति के लिए एक श्रेष्ठ जीवन का निर्माण, 4–भारत के अध्यात्म ज्ञान से संसार का कल्याण और 5 है व्यक्ति को पूर्ण बनाना और पूर्ण समाज की रचना के लिए निर्माण।

श्री अरविंद का मानना था कि ज्ञान विभिन्न प्रकार का होता है जिसमें एक है अंतःप्रेरणा। उन्होंने अंतःप्रेरणा को एक कठिन वस्तु माना। वह जब चाहती है तब आती है, अपना कार्य पूरा करने से पहले ही एकाएक बंद हो जाती है। बुलाए जाने से उतरने से इंकार करती है। अरविंद ने वेद, गीता, बाईबिल, कुरान और अन्य अनेक ग्रंथ पढ़े थे लेकिन उन्होंने वेद को सबसे अधिक मान्यता दी। उन्होंने वेद के आधार पर ही अतिमानस की कल्पना की। उन्होंने कहा –अतिमानवता का अर्थ ऐसा मनुष्य होना नहीं है, जो अपनी प्रकृति की पराकाष्टा पर पहुंच चुका हो, वह मानवीय महत्ता, ज्ञान, बल, इच्छा, चरित्र, प्रतिभा, सक्रिय शक्ति, साधुता, प्रेम, पवित्रता या पूर्णता की उच्चतर कोटि भी नहीं है। अतिमानस मनोमय मनुष्य और उसकी सीमाओं से परे की चीज है। वह तो मानवीय प्रकृति की उच्चतम चेतना से भी महत्तर चेतना है। श्री अरविंद मानते थे कि अतीत को लेकर हमें अधिक सम्मोहित नहीं होना चाहिए। अपनी पुस्तक भारतीय संस्कृति के आधार में वह लिखते हैं–हमारे अतीत में जो कुछ भी महान् मौलिक, उन्नतिकारक, बलदायक, प्रकाशदायक, जयशील एवं अमोध था, उस सब का हम सबको निर्धारण करना होगा।''

श्री अरविंद एक उच्च साधक, योगी और आध्यात्मिक महामानव थे। वह लगातार 36 घंटे समाधि लगा सकते थे। श्री अरविंद के जीवन में बदलाव तब आया जब उनके आश्रम में श्री माँ मीरा का आगमन हुआ। कहा जाता है, श्री मां को स्वप्न में देवशक्ति ने बताया कि उन्हें पाण्डिचेरी आना चाहिए जहां एक महान् योगी श्री महर्षि अरविंद का उन्हें सानिध्य प्राप्त होगा। दोनों अर्थात् श्री मां और श्री अरविंद ने पाण्डिचेरी में भारत के नवनिर्माण और स्वतंत्रता के लिए जो भी साधना के द्वारा किया वह हमेशा के लिए अमर हो गया। महर्षि अरविंद चाहते थे कि भारत से दरिद्रता, गरीबी, परतंत्रता, अधार्मिकता, कृपणता, पाखण्ड, अंधविश्वास, बुराइयां और गलत प्रथाओं का हमेशा के लिए खात्मा हो जाए और भारत पुनः विश्वगुरू के रूप में प्रतिष्ठा प्राप्त करे।

महर्षि अरविंद ऐसे महान् विचारक थे जिन्होंने सदगुण, समाज, योग, संस्कृति, धर्म, वैदिक धारा, समस्याएं, समता,, सभ्यता, सच्चाई, संघर्ष,, संकल्प, श्रद्धा, विश्वास, शुभ–अशुभ, शक्ति, व्यवस्था, शांति, वैराग्य, विश्व–प्रेम, विरह, वेद, विश्व'साम्राज्य,विकास वर्ण–व्यवस्था, राष्ट्र और राष्ट्रीयता, राजनीति, मोक्ष, मौन, युक्तिवाद, मानसिक ज्ञान, मैत्री, मानव–प्रगति,मनुष्य मधुरता और भाषा जैसे अनेक शब्दों के नये अर्थ और व्याख्या की। वह अंग्रेजी में लिखते अवश्य थे, लेकिन हिंदी, फ्रांसीसी, तमिल, बंगला, फ्रेंच जैसी कई भाषाएं जानते थे। वह किसी भी व्यक्ति, वस्तु, विषय, राष्ट्र और स्थान को अपनी दृष्टि से देखते थे। वह एक महान् दार्शनिक होने के साथ ही साथ एक महान् योगी, भाषाविद्, शिक्षाशास्त्री, राजनीतिज्ञ, अध्यात्मवेत्ता और धर्म पुरुष थे।

महर्षि अरविंद का चिंतन विश्व–मानवता के उच्चतर आदर्श की भावना से संचालित था। उन्होंने राष्ट्रीयता के विविध प्रसंगों में मनोवैज्ञानिक एकता को अवश्य स्वीकार किया। पूंजीवादी और साम्राज्यवादी व्यवस्था को उन्होंने विश्व के आदर्शों के विपरीत अनुभव करने वाले व्यक्ति थे। उन्होंने आध्यात्मिकता से परिपूर्ण शांतिवादी दृष्टिकोण का विकास किया। उत्थान के लिए उन्होंने योग को ग्रहण किया। इस प्रकार श्री अरविंद एक पूर्ण व्यक्तित्व के रूप में सामने आते हैं। **************

– सम्पादक

दुनियादारी का रंग जिसके ऊपर न चढ़े वही महात्मा

दुनियादारी का रंग भला किसके ऊपर नहीं चढ़ा होता। जितने भी जिंदगी के रंग हैं वे सभी किसी न किसी रूप में दुनियादारी से ही ताल्लुक रखते हैं। यदि दुनियादारी का रंग न चढे तो उसे योगी, साधु या महात्मा मान लिया जाता है। सच्चे मायने में योगी, संत या महात्मा होना और बात है, कपड़े रंग कर महात्मा होना और बात है। जो वाकई में अंदर से योगी या महात्मा हैं वे ही दुनियादारी के रंग से अधूते हैं। करोड़ों वर्षों में कबीर और चैतन्य महाप्रभु या दयानंद व श्री अरविंद जैसे महामानव दुनिया में रहकर दुनियादारी के रंग से अछूते रहते हैं। दुनिया में रहकर दुनियादारी का रंग यदि न चढ़ा तो समझिए संत या महात्मा होना सार्थक हुआ। दूसरी तरफ दुनिया में रहकर घर–गृहस्थी बसाकर भी दुख सहते कष्ट झेलते हुए भी दुनिया के रंग से अलग अपनी दुनिया बना लेना तो और भी बड़ी बात है। ऐसे लोगों को ही भगवान् कृष्ण ने गीता में 'स्थिरप्रज्ञ' कहा है। वेद में ऐसे लोग 'आत्मज्ञानी' कहे गए हैं। जैसे राजा जनक और महात्मा भर्तृहरि महराज। इन सब बातों का यहां वर्णन का मतलब तो कुछ होना चाहिए। मतलब यह है कि ये सारी स्थितियां तब आती हैं जब इंसान में चैत्य पुरुष का विकास हो जाता है और लगातार आगे भी होता रहता है। समाज में संकट यह है कि विकास के नाम पर महज भौतिक विकास ही हो रहा है और इसे ही असली विकास मान लिया गया है। इससे इंसान के अंदर अंहकार, स्वार्थपरता, लंपटता, विश्वासघात, क्रोध, हिंसा और अतिक्रमण करने की प्रवृति लगातार बढ़ती जा रही है। आज दुनिया में जो संकट या समस्याएँ दिखाई पड़ रही हैं वे सारी की सारी चैत्य पुरुष के विकास के न होने के कारण है। चैत्य को हम सामान्य रूप से 'चेतना का विकास' कह सकते हैं। अब सवाल उठता है, जिस विकास के न होने से दुनिया की तमाम समस्याएं पैदा हो गई हैं उसका विकास कैसे किया जाय? चैत्य पुरुष के विकास और जागरण दोनों की आज जरूरत है। सब से पहले हमारे अंदर चैत्य का जागरण होता है फिर उसका विकास शुरू हो जाता है। आज आए दिन न जाने कितने 'जागरणों' के हम गवाह बनते हैं लेकिन जिसका जागरण होना चाहिए उसका कभी नहीं होता। परिणाम यह हो रहा है कि जिंदगीभर हम दुनिया को जगाते रहते हैं और खुद सोते रहते हैं। श्री अरविंद कहते हैं, अंतर्पट खुलते हैं तब सबसे पहले प्रबल अनुभव यह होता है कि हम सदा से हैं और सदा रहेंगे। मनुष्य एक दूसरे ही आयाम में प्रवेश कर जाता है। जहां वह प्रत्यक्ष देखता है कि वह सृष्टि के समान पुरातन और नित्य युवा है। वह यह भी देखता है कि सुदूर अतीत में विस्तृत, और भविष्य की ओट में छिपे असंख्य अनुभवों की अटूट श्रृंखला में यह जीवन एक अनुभव, एक कड़ी है। तब पृथ्वी के समान सब विशाल बन जाता है। विचार करिए जब अंतर्पट खुले ही न तो क्या ऐसी स्थिति तक हम पहुंच सकते हैं, शायद नहीं। इस लिए सबसे पहले 'चेतना का जागरण' होना चाहिए। इसी राह पर चलकर आगे आत्म साक्षात्कार की स्थिति भी बनती है। आगे चलकर परमात्मा का परम प्रकाश से भी हमारा सामना हो सकता है। और गहरे अधियारे से निकलने का रास्ता भी तो यही है।

दरअसल, हम जिस समाज और माहौल में रहते हैं, उसके बाहर निकलने के बारे में सोचते तक नहीं हैं। यही हमारे 'चैत्य जागरण और चैत्य विकास' का होने का बड़ा कारण बनता है। छोटी–छोटी बातों में हमारा स्वार्थ आड़े आ जाय, बहुत छोटी बातों पर हम लड़ने के लिए तैयार हो जाएं और अपनी बातों का हर हाल में 'सही' साबित करने के लिए किसी भी स्तर पर उतरने के लिए हमेशा मुंट्ठियां भींचते रहें, फिर तो कभी 'चैत्य जगारण' के विचार ही नहीं आएंगे। ऐसे में 'तेरे–मेरे' की धारणा, भावना और राह को ही सही साबित करते हुए हम भूल जाते हैं कि 'हम एक विचारशील प्राणी' यानी मनुष्य है।

वेदोद्धारक और समाज सुधारक महर्षि दयानंद ने मेरे–तेरे के भेदभाव को मिटाने का बहुत ही उम्दा रास्ता बताया है। महर्षि कहते हैं, सबको अपनी ही उन्नति से संतुष्ट न रहना चाहिए बल्कि सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिए। यह एक आदर्श मानव और समाज के लिए उन्होंने बहुत ही उपयोगी और व्यावहारिक रास्ता बताया है। महर्षि आगे कहते हैं, सर्व हितकारी कार्यों में परतंत्र रहना चाहिए और प्रत्येक हिताकरी कार्य में हम स्वतंत्र रहें। यह है आत्म अनुशासन, स्वअनुशासन और समाज अनुशासन का मंत्र। विचार करिए, ये दोनों बातें दुनियादारी, दुनियादारी से ऊपर उठे हुए और दुनियादारी से मजा लेने वाले सभी के ऊपर फिट बैठती हैं। मतलब सबकी उन्नति के साथ अपनी उन्नति भी हो ही जाती है। हमारे अंदर सबकी उन्नति का भाव कैसे आए यह बात समझ में आ जाएगी।

सबके सुख दुख को अपना सुख दुख समझना और सबकी भलाई में ही अपनी भलाई मानना, कितनी बड़ी बात है। चैत्य का जागरण और विकास का रास्ता यही है। लौकिक और पारलौकिक दोनों का समन्वय भी इनसे हो जाता है। 'अपनी ही उन्नति से संतुष्ट नहीं रहना चाहिए बल्कि सबकी उन्नति में अपनी उन्नति की बात यदि दुनिया के लोग मान लें तो यह धराधाम स्वर्ग बन जाय। वाकई में जब हम सोचते हैं कि इससे तो हमारा कोई लेना–देना नहीं, यह तो भला व्यक्ति से ताल्लुक रखता है फिर तो समस्या ही समस्या है। लेकिन इसकी जगह हम समझ लें कि इस धरती का हर व्यक्ति उसके अपने ही परिवार का एक मेम्बर है, फिर बताइए, आप के दिल में उसके प्रति प्यार और सद्‌भावना जगी गी कि नहीं? यही तो सच्चा योग, अध्यात्म और मानव धर्म है। यही प्यारी हमारी संस्कृति का मूल उदघोष है। सोचिए, क्या कभी हम ऐसे सोचते हैं। नहीं न। आज से इस बारे में सोचना शुरू कर दीजिए, देखिएगा, आप का हृदय इतना विशाल बन जाएगा कि दुनिया का हर व्यक्ति आप का अपना सगा लगेगा। यही तो चैत्य जागरण और विकास का मकसद है। इस राह पर आगे बढ़िए, अंधेरा खुद–ब –खुद छट जाएगा।

****

मैं क्या लिखूं, मैं क्या बोलूं ?

कलम हुई पाबंद है वाणी पर प्रतिबंध है
मन में अन्तर्द्वन्द्व है
मैं क्या लिखूं, मैं क्या बोलूं ?

मन की बातें कहने का हक,
अब अपने को नहीं रहा।
यहाँ बोलने का हक हमसे,
कुछ लोगों ने छीन लिया।
सत्य कैद में बंद है झूठ फिरे स्वच्छंद है
मन में अन्तर्द्वन्द्व है,
मैं क्या लिखूं, मैं क्या बोलूं ?

आजादी की सीमाएं अब, धीरे-धीरे सिकुड़ रहीं।
घोर गुलामी की जंजीरे, कुटिल पाश में जकड़ रहीं।
जगह- जगह जयचंद हैं नफरत की दुर्गन्ध है
मन में अन्तर्द्वन्द्व है,
मैं क्या लिखूं, मैं क्या बोलूं ?

न्याय भला किससे माँगे,
जब शासक ही अन्यायी है।
चोरों की पहरेदारी है, खुलकर लूट मचाई है।
सत्ता का आनन्द है प्रगति हुई सब मंद है
मन में अन्तर्द्वन्द्व है,
मैं क्या लिखूं, मैं क्या बोलूं ?

देश की सम्पत्ति बेच रहे हैं, देश कर्ज में डूबा है।
लोगों को रोजगार नहीं है, कितना बड़ा अजूबा है।
आँखे हैं पर अंध है पड़ा गले में फंद है
मन में अन्तर्द्ववन्द्व है,
मैं क्या लिखूं, मैं क्या बोलूं ?

जिसके शब्द और आचरण, दोनों हुए निरंकुश हैं।
ऐसे राजा के शासन में, बोलो क्या जनता खुश है?
बिगड़ा जीवन छंद है अरमानो पर धुन्ध है
मन में अन्तर्द्ववन्द्व है,
मैं क्या लिखूं, मैं क्या बोलूं ?

– ✍वेद कुमार दीक्षित
(देवास)

कभी न हारे हैं जीवन में...

कभी न हारे हैं जीवन में, कभी न हम हारेंगे,
मुश्किल वक्त में हिम्मत से जीवन को सवारेंगे।
अगर नही हुए धनवान, पर बनना न मुझे बेईमान,
प्रभु ने जो दिया मुझे, खुश रह जीवन को निखारेंगे।।

सद्वचन ही बोलेंगे, न करेंगे किसी से छल,
सत्पथ पर चलते रहने को लगाएँगे पूरा बल।
छोटे छोटे कर प्रयास, लिखेंगे एक नया इतिहास,
साहित्य सृजन में अब तो यह जीवन ही गुजारेंगे।।

न किसी से ईर्ष्या रखूँ, नहीं किसी से करता होड़,
सफलता पाने को जीवन में करता न मैं तोड़ मरोड़।
चलता न मैं कुटिल चाल, अभिलाषा न बनूँ मालामाल,
आत्मसम्मान को चोट लगे, न कोई प्रस्ताव स्वीकारेंगे।।

कठिन बहुत हालात भी हो सच का दामन न छोड़ेंगे,
आशा के दीप जले सदा, जीवन सद्कर्मों पर मोड़ेंगे।
न झुकने की मेरी आदत, प्रभु के आगे करूँ इबादत,
कड़े परिश्रम के बलबूते जीवन को सफल बनाएँगे।।

माना सच राह पर चलना होगा न बिल्कुल आसान,
पर सत्य पथ का अनुगमन देगा एक अलग पहचान।
कभी जीवन में होगी निराशा, न छोड़नी हमें है आशा,
कभी न हारे हैं जीवन में, निश्चित कभी न हम हारेंगे।।

– ✍ **लाल देवेन्द्र कुमार श्रीवास्तव**
मोबाइल नं – ७५५०९२

प्यार होना चाहिए

आदमी को उम्रभर गमख्वार होना चाहिए।
और दिल में सिर्फ, उसके प्यार होना चाहिए।

जिसकी मिट्टी में फले-फूले सदा खाया रिजक।
नाज उस पर हर किसी को यार होना चाहिए।।

मजहबों और जातियों के भेदभावों से अलग।
भाईचारे का नया संसार होना चाहिए।।

सुख में तो साथी बहुत मिलते ही रहते हैं मगर।
मुश्किलों की हर घड़ी में यार होना चाहिए।।

हर कोई मशगूल है, अपनी भलाई में मगर।
वास्ते औरों के भी उपकार होना चाहिए।।

बात जो परदे में हो, अच्छी वो परदे ही में हो।
राज को यों राज ही दरकार होना चाहिए।।

चक्र की आवाज पहुँची आप सबके बीच में।
प्यार की वर्षा से यारो प्यार होना चाहिए।।

– ✍ डॉ राकेश चक्र
(एमडी,एक्यूप्रेशर
एवं योग विशेषज्ञ)
मुरादाबाद (उ.प्र).
मोब – ९४५६२०१८५७

भूल सुधार

आर्ष क्रांति जुलाई २०२० अंक में पृष्ठ संख्या २५ पर प्रकाशित लेख की लेखिका है **अनुमेहा शर्मा**। भूलवश नाम छूट गया था।

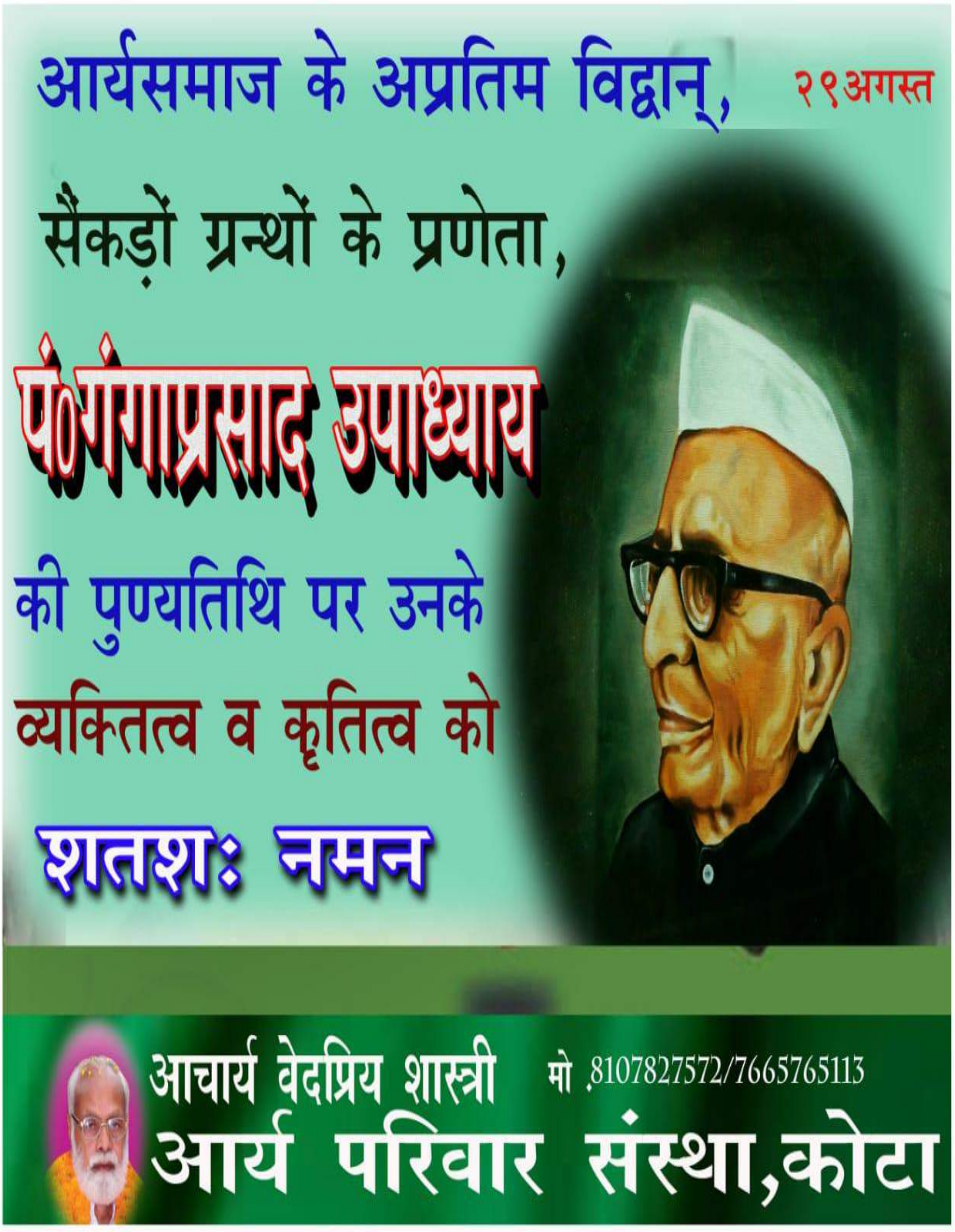

आर्यसमाज के अप्रतिम विद्वान्,
२१अगस्त
सैकड़ों ग्रन्थों के प्रणेता,
पं0गंगाप्रसाद उपाध्याय
की पुण्यतिथि पर उनके
व्यक्तित्व व कृतित्व को
शतशः नमन
आचार्य वेदप्रिय शास्त्री
मो .8107827572/7665765113
आर्य परिवार संस्था,कोटा